

जिनभाषित

वीर निर्वाण सं. 2534

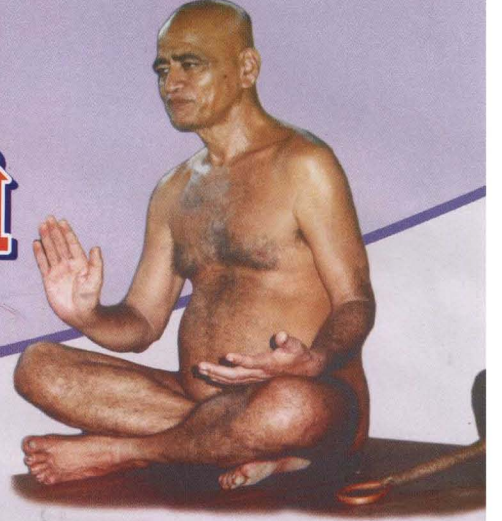


भगवान् पार्श्वनाथ
श्री 1008 पार्श्वनाथ दि. जैन मन्दिर अतिशय क्षेत्र (छत्री)
शिवपुरी (म.प्र.)

पौष, वि.सं. 2064

जनवरी, 2008

आचार्य श्री विद्यासागर जी के दोहे



37

न, मन नमन परिणमन हो, नहीं श्रमण में खेद ।
जब तक अब कब सब नहीं, और काल के भेद ॥

38

धन जब आता बीच में, वतन सहज हो गौण ।
तन जब आता बीच में, चेतन होता मौन ॥

39

फूल राग का घर रहा, काँटा रहा विराग ।
तभी फूल का पतन हो, राग त्याग, तू जाग ॥

40

दुबला-पतला हूँ नहीं, सबल समल ना मूढ़ ।
रूढ़ नहीं हूँ प्रौढ़ ना, व्यक्त नहीं हूँ गूढ़ ॥

41

नहीं नपुंसक पुरुष हूँ, अबला नहीं बवाल ।
जरा जरा से ग्रसित भी, नहीं युवा हूँ बाल ॥

42

काया, माया से तथा, छाया से हूँ हीन ।
राजा राणा हूँ नहीं, जाया के आधीन ॥

43

तुलना उपमा की हवा, मुझे न लगती धूप ।
स्वरूप मेरा रूप ना, कुरूप हो या रूप ॥

44

क्रोध काँपता बिचकता, मान भूल निज भाव ।
लोभ लौटता दूर से, मेरे देख स्वभाव ॥

45

जीव जिलाना जालना, दिया जलाना कार्य ।
भूल भुलाना भूलना, शिव-पथ में अनिवार्य ॥

46

राग बिना आतम दिखे, आतम बिन ना राग ।
धूम बिना तो आग हो, धूम नहीं बिन आग ॥

47

लौकिकता से हो परे, धरे अलौकिक शील ।
कर्म करे ना फल चखे, प्रभु तो ज्यों नभ नील ॥

48

स्वर्गों में ना भेजते, पटके ना पाताल ।
हम तुम सब को जानते, प्रभु तो जाननहार ॥

49

ना दे अपने पुण्य को, पर के ना ले पाप ।
पाप-पुण्य से हैं परे, प्रभु अपने में आप ॥

50

थक जाना ना हार है, पर लेना है श्वास ।
रवि निशि में विश्राम ले, दिन में करे प्रकाश ॥

51

चेतन का जब जतन हो, सो तन की हो धूल ।
मिले सनातन धाम सो, मिटे तनातन भूल ॥

52

मोह दुःख का मूल है, धर्म सुखों का स्रोत ।
मूल्य तभी पीयूष का, जब हो विष से मौत ॥

53

चिन्तन से चिन्ता मिटे, मिटे मनो मल-मार ।
प्रसाद मानस में भरे, उभरें भले विचार ॥

54

भले-बुरे दो ध्यान हों, समाधि इक हो, दो न ।
लहर झाग तट में रहे, नदी मध्य में मौन ॥

‘सूर्योदयशतक’ से साभार

जनवरी 2008

मासिक

वर्ष 7,

अङ्क 1

जिनभाषित

सम्पादक
प्रो. रतनचन्द्र जैन

कार्यालय

ए/2, मानसरोवर, शाहपुरा
भोपाल- 462 039 (म.प्र.)
फोन नं. 0755-2424666

सहयोगी सम्पादक

पं. मूलचन्द्र लुहाड़िया, मदनगंज किशनगढ़
पं. रतनलाल बैनाड़ा, आगरा
डॉ. शीतलचन्द्र जैन, जयपुर
डॉ. श्रेयांस कुमार जैन, बड़ौत
प्रो. वृषभ प्रसाद जैन, लखनऊ
डॉ. सुरेन्द्र जैन 'भारती', बुरहानपुर

शिरोमणि संरक्षक

श्री रतनलाल कँवरलाल पाटनी
(मे. आर.के.मार्बल)
किशनगढ़ (राज.)
श्री गणेश कुमार राणा, जयपुर

प्रकाशक

सर्वोदय जैन विद्यापीठ
1/205, प्रोफेसर्स कॉलोनी,
आगरा-282 002 (उ.प्र.)
फोन : 0562-2851428, 2852278

सदस्यता शुल्क

शिरोमणि संरक्षक 5,00,000 रु.
परम संरक्षक 51,000 रु.
संरक्षक 5,000 रु.
आजीवन 1100 रु.
वार्षिक 150 रु.
एक प्रति 15 रु.
सदस्यता शुल्क प्रकाशक को भेजें।

अन्तस्तत्त्व

पृष्ठ

- ◆ आचार्य श्री विद्यासागर जी के दोहे आ.पृ. 2
- ◆ कविता-बर्थ डे : मुनि श्री निर्णयसागर जी आ.पृ. 3
- ◆ मुनि श्री क्षमासागर जी की कविताएँ आ.पृ. 4
- ◆ सम्पादकीय : अत्रतपूर्वक तप से निर्जरा कम,
आस्रव अधिक 2
- ◆ लेख
 - श्री बाई जी (धर्ममाता चिरौंजाबाई) की आत्मकथा
: क्षु. श्री गणेशप्रसाद जी वर्णी 4
 - जिनवाणी का उद्गम ओर उसका विकास
: पं० तेजपाल जी काला 7
 - विदेशी संग्रहालय में महत्त्वपूर्ण प्रतिमाएँ
: डॉ० ब्रजेन्द्रनाथ शर्मा 10
 - जिनदेव और मिथ्यादेव की सच्ची समझ ही दिग्विजय
: डॉ० राजेन्द्र कुमार बंसल 14
 - जैनधर्म : विश्व शान्ति में सहायक
: डॉ० निजाम उद्दीन 18
 - केवल शान-शौकत से नहीं बनता अच्छा व्यक्तित्व
: डॉ० एस० बी० सिंह 20
 - माता बहिन सुता पहिचानो : डॉ० ज्योति जैन 22
 - कालसिंह ने मृग चेतन को घेरा भववन में
: डॉ० श्रीमती रमा जैन 24
 - अभिशाप बना वरदान : एक लड़की की कहानी
: जिनेश कुमार जैन 25
- ◆ कविताएँ
 - दर्दों के हरकारे : मनोज जैन 'मधुर' 13
 - दहेज के विरोध में : विनोद कुमार 'नयन' 26
- ◆ जिज्ञासा-समाधान : पं. रतनलाल बैनाड़ा 27
- ◆ ग्रन्थ-समीक्षा : अभय कुमार जैन प्राचार्य 30
- ◆ समाचार 31, 32

लेखक के विचारों से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

'जिनभाषित' से सम्बन्धित समस्त विवादों के लिये न्यायक्षेत्र भोपाल ही मान्य होगा।

अव्रतपूर्वक तप से निर्जरा कम, आस्रव अधिक

आचार्य श्री वट्टकेर-कृत प्राचीन ग्रन्थ (प्रथम शताब्दी ई०) 'मूलाचार' में निम्नलिखित गाथा आयी है-

सम्मादिद्विस्स वि अविरदस्स ण तवो महागुणो होदि।

होदि हु हत्थिणहाणं चुंदच्छिदकम्म तं तस्स॥ ९४२॥

अनुवाद- "जिसने व्रत धारण नहीं किये हैं, वह मनुष्य यदि सम्यग्दृष्टि है, तो भी उसका तप बहुत लाभदायक नहीं है, क्योंकि वह हस्तिस्नान और लकड़ी में छेद करनेवाले बरमा की रस्सी के समान होता है।

टीकाकार आचार्य वसुनन्दी इस गाथा का अर्थ खोलते हुए लिखते हैं- "तिष्ठतु तावन्मिथ्यादृष्टिः सम्यग्दृष्टेरप्यविरतस्यासंयतस्य न तपो महागुणः --- कर्म निर्मूलनं कर्तुमसमर्थं---। कुतो? यस्माद् भवति हस्तिस्नानम्। 'हु' शब्द एवकारार्थः स च हस्तिस्नानेनाभिसम्बन्धनीयो हस्तिस्नानमेवेति। यथा हस्ती स्नातोऽपि न नैर्मल्यं वहति, पुनरपि करेणार्जितपांशुपटलेनात्मानं मलिनयति तद्वत्तपसा निर्जीणेऽपि कर्मांशे बहुतरादानं कर्मणोऽसंयम-मुखेनेति। दृष्टान्तान्तरमप्याचष्टे- चुंदच्छिदकर्म चुंदं काष्ठं छिनत्तीति चुंदच्छिद्रज्जुस्तस्याः कर्म क्रिया। यथा चुंदच्छिद्रज्जोरुद्वेष्टनं वेष्टनं च भवति तद्वत्तस्यासंयतस्य तत्तपः अथवा 'चुंदच्छुदगं व'- चुन्दच्युतकमिव मन्थनचर्म-पालिकेव तत्संयमहीनं तपः। दृष्टान्तद्वयोपन्यासः किमर्थ इति चेन्नैष दोषः। अपगतात्मकर्मणो बहुतर-पादानमसंयमनिमित्तस्येति प्रदर्शनाय हस्तिस्नानोपन्यासः। आर्द्रतनुतया हि बहुतरमुपादत्ते रजः। बन्धरहिता निर्जरा स्वास्थ्यं प्रापयति, नेतरा बन्धसहभाविनीति। किमिदं? चुन्दच्छिदः कर्मैव-एकत्र वेष्टयत्यन्यत्रोद्वेष्टयति, तपसा निर्जरयति कर्मासंयमभावेन बहुतरं गृह्णाति कठिनं च करोतीति।" (मूलाचार/गाथा ९४२)।

अनुवाद- "मिथ्यादृष्टि की तो बात ही दूर, सम्यग्दृष्टि भी यदि अविरत (असंयत) है, तो उसका तप भी अधिक गुणकारी नहीं है, क्योंकि वह कर्मनिर्मूलन में असमर्थ होता है। क्यों? इसलिए कि वह हस्तिस्नान है। 'हु' शब्द 'एव' अर्थ का वाचक है। वह हस्तिस्नान के साथ सम्बद्ध है, अतः 'अविरत का तप हस्तिस्नान ही है', यह अर्थ प्रतिपादित होता है। जैसे हाथी स्नान कर लेने पर भी निर्मल नहीं रह पाता, अपनी सूँड़ से शरीर पर धूल डालकर पुनः स्वयं को मलिन कर लेता है, वैसे ही व्रतरहित सम्यग्दृष्टि भी तप के द्वारा निर्जरा तो थोड़े से कर्मों की करता है, किन्तु असंयम के द्वारा आस्रव बहुत से कर्मों का कर लेता है। दूसरा दृष्टान्त चुन्दच्छिदकर्म का दिया गया है। जैसे चुन्दच्छिद् अर्थात् बरमा (लकड़ी में छेद करने के लिए प्रयुक्त लोहे के औजार) की रस्सी खुलती और लिपटती है, असंयमी का तप वैसा ही होता है। अथवा 'चुन्दच्युतक' का अर्थ मथानी की रस्सी है। वह भी जिस प्रकार खुलती और लिपटती है, उसी प्रकार संयमहीन के तप से एक तरफ कर्मों की निर्जरा होती है, और दूसरी तरफ कर्मों का आस्रव होता है। दो दृष्टान्त क्यों दिये गये हैं? इसका समाधान यह है कि तप के द्वारा जितने कर्मों की निर्जरा होती है, उससे अधिक आस्रव असंयम के निमित्त से होता है, यह प्रदर्शित करने के लिए हस्तिस्नान का दृष्टान्त दिया गया है, क्योंकि गीले शरीर पर धूल बहुत लिपटती है। और बन्धरहित निर्जरा ही मोक्ष प्राप्त कराती है, बन्ध-सहित निर्जरा नहीं, यह दिखलाने के लिए चुन्दच्छिदकर्म का दृष्टान्त उपन्यस्त किया गया है। निष्कर्ष यह कि व्रतरहित सम्यग्दृष्टि तप से जितने कर्मों की निर्जरा करता है, अविरतभाव से उससे अधिक कर्मों का बन्ध कर लेता है, अतः पहले व्रत ग्रहण करना चाहिए, तत्पश्चात् तप करना चाहिए।"

मूलाचार की इस गाथा द्वारा उन मिथ्यादृष्टि एवं अविरतसम्यग्दृष्टि जैन गृहस्थों को उपदेश दिया गया है, जिन्होंने सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के लिए जिनप्रणीत ग्रन्थों के विधिवत् एवं नियमित स्वध्याय का कभी भी प्रयत्न नहीं किया अथवा सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लेने पर द्वितीय व्रतप्रतिमा धारण नहीं की, फिर भी पर्युषण पर्व में दस-दस, ग्यारह-ग्यारह, दिन के उपवास करने का कठिन कार्य करते हैं। वे समझते हैं कि वे बहुत बड़ा धर्म कर रहे हैं, बहुत बड़ा तप कर रहे हैं, किन्तु मूलाचार की उपर्युक्त गाथा कहती है कि न तो उनका वह कोई धर्म है, न कोई तप, क्योंकि वह कर्मों के उन्मूलन में समर्थ नहीं है। मिथ्यादृष्टि को तो उन उपवासों से कर्मों की अल्पमात्र भी निर्जरा संभव नहीं है, अविरतसम्यग्दृष्टि को संभव है, किन्तु उन उपवासों से जितनी निर्जरा होती है, व्रतों के अभाव में कर्मों का आस्रव उस निर्जरा से कई गुना अधिक होता है। अतः वे उपवास हस्तिस्नानवत् निरर्थक हैं।

किन्तु सम्यग्दृष्टि जीव सम्यग्ज्ञानी होता है, अतः व्रतधारण किये बिना उपर्युक्त प्रकार के तप में उसकी प्रवृत्ति नहीं हो सकती। उसके द्वारा सर्वप्रथम व्रतधारण करने का ही प्रयत्न संभव है। मिथ्यादृष्टि जीव ही सम्यग्ज्ञान न होने से अथवा ख्याति-पूजा की लालसा से महा-उपवासों में प्रवृत्त हो सकता है। मूलाचार में वर्णित उपर्युक्त जिनोपदेश के अनुसार मुमुक्षु को सर्वप्रथम सम्यग्दर्शन-प्राप्ति का पौरुष करना चाहिए, तत्पश्चात् सामर्थ्यानुसार अणुव्रत या महाव्रत ग्रहण करना चाहिए, उसके बाद महा-उपवासादि तप तपना चाहिए। यही कर्मक्षय का जिनोपदिष्ट वैज्ञानिक मार्ग है।

रतनचन्द्र जैन

हितोपदेश

संसारी प्राणी सुख चाहता है, दुःख से भयभीत होता है। दुःख छूट जावे ऐसा भाव रखता है। लेकिन दुःख किस कारण से होता है इसका ज्ञान नहीं रखा जावेगा तो कभी भी दुःख से दूर नहीं हुआ जा सकता। आचार्य कहते हैं- कारण के बिना कोई कार्य नहीं होता इसलिए दुःख के कारण को छोड़ दो दुःख अपने आप समाप्त हो जायेगा। सुख के कारणों को अपना लिया जावे तो सुख स्वतः ही उपलब्ध हो जावेगा। दुःख की यदि कोई जड़ (कारण) है तो वह है- परिग्रह। परिग्रह संज्ञा के वशीभूत होकर यह संसारी प्राणी संसार में रुल रहा है, दुःखी हो रहा है। पर वस्तु को अपनी मानकर उससे ममत्व भाव रखता है यही तो दुःख का कारण है।

आचार्य महाराज ने परिग्रह त्याग के संबंध में बताया कि एक बार कुम्हार, गधे के ऊपर मिट्टी लादकर आ रहा था। वह गधा नाला पार करते समय नाले में ही बैठ गया। मिट्टी धीरे-धीरे पानी में गलकर बहने लगी। उसका परिग्रह कम हो गया और उसका काम बन गया, उसे हल्कापन महसूस होने लगा। फिर हँसकर बोले- “जब परिग्रह छोड़ने से गधे को भी आनंद आता है, तो आप लोगों को भी परिग्रह छोड़ने में आनंद आना चाहिए।” वहाँ बैठे श्रावक आचार्य भगवन् के कथन का अभिप्राय समझ गये और सभी लोग आनंद विभोर हो उठे। हँसी-हँसी में ही गुरुदेव से इतना बड़ा उपदेश मिल गया कि यदि इसे जीवन में उतारा जावे तो संसार से भी तरा जा सकता है और शाश्वत सुख को प्राप्त किया जा सकता है।

(छपारा पंचकल्याणक, 20. 01. 2001)

मुनि श्री कुन्थुसागरकृत 'अनुभूत रास्ता' से साभार

श्री बाई जी (धर्ममाता चिरौंजाबाई) की आत्माकथा

क्षुल्लक श्री गणेशप्रसाद जी वर्णी

हे प्रभो! मैं एक ऐसे कुटुम्ब में उत्पन्न हुई जो अत्यन्त धार्मिक था। मेरे पिता मौजीलाल एक व्यापारी थे। शिकोहाबाद में उनकी दुकान थी। वह जो कुछ उपार्जन करते उसका तीन भाग बुन्देलखण्ड से जानेवाले गरीब जैनों के लिए दे देते थे। उनकी आय चार हजार रुपया वार्षिक थी। एक हजार रुपया गृहस्थी के कार्य में खर्च होता था।

एक बार श्रीगिरिराज की यात्रा के लिए बहुत से जैनी जा रहे थे। उन्होंने श्री मौजीलालजी से कहा कि 'आप भी चलिये।' आपने उत्तर दिया कि 'मेरे पास चार हजार रुपया वार्षिक की आय है, तीन हजार रुपया मैं अपने प्रान्त के गरीब लोगों को दे देता हूँ और एक हजार रुपया कुटुम्ब के पालन में व्यय हो जाता है, इससे नहीं जा सकता। श्री भगवान् की यही आज्ञा है कि जीवों पर दया करना। उसी सिद्धान्त की मुझे दृढ़ श्रद्धा है। जिस दिन पुष्कल द्रव्य हो जावेगा उस दिन यात्रा कर आऊँगा।'

मेरे पिता का मेरे ऊपर बहुत स्नेह था। मेरी शादी सिमरा ग्राम के श्रीयुत सिं० भैयालाल जी के साथ हुई थी। जब मेरी अवस्था अठारह वर्ष की थी तब मेरे पति आदि गिरनार की यात्रा को गये। पावागढ़ में मेरे पति का स्वर्गवास हो गया, मैं उनके वियोग में बहुत खिन्न हुई, सब कुछ भूल गई। एक दिन तो यहाँ तक विचार आया कि संसार में जीवन व्यर्थ है। अब मर जाना ही दुःख से छूटने का उपाय है। ऐसा विचार कर एक कुएँ के ऊपर गई और विचार किया कि इसी में गिरकर मर जाना श्रेष्ठ है। परन्तु उसी क्षण मन में विचार आया कि यदि मरण न हुआ तो अपयश होगा और यदि कोई अंग-भंग हो गया तो आजन्म उसका क्लेश भोगना पड़ेगा, अतः कुएँ से पराङ्मुख होकर डेरापर आ गई और धर्मशाला में जो मंदिर था उसी में जाकर श्री भगवान् से प्रार्थना करने लगी कि—'हे प्रभो! एक तो आप है जिनके स्मरण से जीवन का अनन्त संसार छूट जाता है और एक मैं हूँ जो अपमृत्यु कर नरक मार्ग

को सरल कर रही हूँ। हे प्रभो! यदि आज मर जाती तो न जाने किस गति में जाती? आज मैं सकुशल लौट आई यह आपकी ही अनुकम्पा है। संसार में अनेक पुरुष परलोक चले गये। उनसे मुझे कोई दुःख नहीं, हुआ पर आज' पतिवियोग के कारण असह्य वेदना हो रही है इसका कारण मेरी उनमें ममता बुद्धि थी। अर्थात् ये मेरे हैं और मैं इनकी हूँ यही भाव दुःख का कारण था। जब तत्त्वदृष्टि से देखती हूँ तब ममता बुद्धि का कारण भी अहम्बुद्धि है ऐसा स्पष्ट प्रतीत होने लगता है। अर्थात् 'अहमस्मि'— जब यह बुद्धि रहती है कि मैं हूँ तभी पर में 'यह मेरा है' यह बुद्धि होती है। इस प्रकार वास्तव में अहम्बुद्धि ही दुःख का कारण है। हे भगवन्! आज तेरे समक्ष यह प्रतिज्ञा करती हूँ कि न मेरा कोई और न मैं किसी की हूँ। यह जो शरीर दीखता है वह भी मेरा नहीं है, क्योंकि दृश्यमान शरीर पुद्गलका पिण्ड है। तब मेरा कौनसा अंश उसमें है जिसके कि साथ मैं नाता जोड़ूँ? आज मेरी भ्रान्ति दूर हुई। जो मैंने पाप किये उसका आपके समक्ष प्रायश्चित्त लेती हूँ। वह यह कि आजन्म एक बार भोजन करूँगी, भोजन के बाद दो बार पानी पीऊँगी, अमर्यादित वस्तु भक्षण न करूँगी, आपकी पूजा के बिना भोजन न करूँगी, रजोदर्शन के समय भोजन न करूँगी यदि विशेष बाधा हुई तो जलपान कर लूँगी। यदि उससे भी सन्तोष न हुआ तो रसों का त्याग कर नीरस आहार ले लूँगी, प्रतिदिन शास्त्र का स्वाध्याय करूँगी, मेरे पति की जो सम्पत्ति है उसे धर्म कार्य में व्यय करूँगी, अष्टमी चतुर्दशी का उपवास करूँगी। यदि शक्ति हीन हो जावेगी तो एक बार नीरस भोजन करूँगी, केवल चार रस भोजन में रखूँगी, एक दिन में तीन का ही उपयोग करूँगी।

इस प्रकार आलोचना कर डेरा में मैं आ गई और सास को, जो कि पुत्र के विरह में बहुत ही खिन्न थीं सम्बोधा— माताराम! जो होना था वह हुआ, अब खेद करने से क्या लाभ? आपकी सेवा मैं करूँगी, आप सानन्द धर्मसाधन कीजिये। यदि आप खेद करेंगी तो मैं सुतरां

खिन्न होउंगी, अतः आप मुझे ही पुत्र समझिये। मेला के लोग इस प्रकार मेरी बात सुनकर प्रसन्न हुए।

पावागढ़ से गिरनार जी गये और वहाँ से जो तीर्थ मार्ग में मिले सबकी यात्रा करते हुए सिमरा आ गये। फिर क्या था? सब कुटुम्बी आ आकर मुझे पतिवियोग के दुःख का स्मरण कराने लगे। मैंने सबसे सान्त्वनापूर्वक निवेदन किया कि जो होना था सो तो हो गया। अब आप लोग उनका स्मरण कर व्यर्थ खिन्न मत हूजिये। खिन्नता का पात्र तो मैं हूँ, परन्तु मैंने तो यह विचारकर सन्तोषकर लिया कि परजन्म में जो कुछ पापकर्म मैंने किये थे यह उन्हीं का फल है। परमार्थ से मेरे पुण्यकर्म का उदय है। यदि उनका समागम रहता तो निरन्तर आयु विषय भोगों में जाती, अभक्ष्य भक्षण करती और दैवयोग से यदि सन्तान हो जाती तो निरन्तर उसके मोह में पर्याय बीत जाती। आत्मकल्याण से वञ्चित रहती, जिस संयम के अर्थ सत्समागम और मोह मन्द होने की आवश्यकता है तथा सबसे कठिन ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना है वह व्रत मेरे पति के वियोग से अनायास हो गया।

जिस परिग्रह के त्याग के लिए अच्छे-अच्छे जीव तरसते हैं और मरते-मरते उससे विमुक्त नहीं हो पाते, पति के वियोग से वह व्रत मेरे सहज में हो गया। मैंने नियम लिया है कि जो सम्पत्ति मेरे पास है उससे अधिक नहीं रखूंगी तथा यह भी नियम किया कि मेरे पति की जो पचास हजार रुपया की साहुकारी है उसमें सौ रुपया तक जिन किसानों के ऊपर है वह सब मैं छोड़ती हूँ तथा सौ रुपया से आगे जिनके ऊपर है उनका ब्याज छोड़ती हूँ। वे अपनी रकम बिना ब्याज के अदा कर सकते हैं। आज से एक नियम यह भी लेती हूँ कि जो कुछ रुपया किसानों से आवेगा उसे संग्रह न करूँगी, धर्मकार्य और भोजन में व्यय कर दूँगी। आप लोगों से मेरी सादर प्रार्थना है कि आज से यदि आप लोग मेरे यहाँ आवें तो दोपहर बाद आवें, प्रातः काल का समय मैं धर्म कार्य में लगाऊँगी। कृषक महाशय मेरी इस प्रवृत्ति से बहुत प्रसन्न हुए।

इधर राज्य में यह वार्ता फैल गई कि सिमरावाली सिंघैन का पति गुजर गया है, अतः उसका धन राज्य में लेना चाहिये और उसकी परवरिश लिये तीस रुपया

मासिक देना चाहिए। किन्तु जब राजदरबार में यह सुना गया कि वह तो धर्ममय जीवन विता रही है, तब राज्य से तहसीलदार को परवाना आया कि उसकी रक्षा की जावे, उसका धन उसी को दिया जावे और जो किसान न दे वह राज्य से वसूलकर उसको दिया जावे। इस प्रकार धन की रक्षा अनायास हो गई।

इसके बाद मैंने सिमरा के मंदिर में सङ्गमर्मर की वेदी बनवाई और उसकी प्रतिष्ठा बड़े समारोह के साथ करवाई। दो हजार मनुष्यों का समारोह हुआ, तीन दिन पंक्ति भोजन हुआ। दूसरे वर्ष शिखर जी की यात्रा की। इस प्रकार आनन्द से धर्म ध्यान में समय बीतने लगा। एक चतुर्मास में श्रीयुत मोहनलाल क्षुल्लक का समागम रहा। प्रतिदिन दस या पन्द्रह यात्री आने लगे, यथाशक्ति उनका आदर करती थी।

इसी बीच में श्री गणेशप्रसाद मास्टर जतारा से आया। उसके साथ में पं० कड़ोरेलाल भायजी तथा पं० मोतीलाल जी वर्णी भी थे। उस समय गणेशप्रसाद की उमर बीस वर्ष की होगी। उसको देखकर मेरा उसमें पुत्रवत् स्नेह हो गया। मेरे स्तन से दुग्धधारा वह निकली। मुझे आश्चर्य हुआ, ऐसा लगने लगा मानो जन्मान्तर का यह मेरा पुत्र ही है। उस दिन से मैं उसे पुत्रवत् पालने लगी। वह अत्यन्त सरल प्रकृति का था। मैंने उसी दिन दृढ़ संकल्पकर लिया कि जो कुछ मेरे पास है, वह सब इसी का है और अपने उस संकल्प के अनुसार मैंने उसका पालन किया। उसने छाँछ माँगी, मैंने रबड़ी दी। यद्यपि इसकी प्रकृति सरल थी तो भी बीच में इसे क्रोध आ जाता था, परन्तु मैं सहन करती गई, क्योंकि एक बार इसे पुत्रवत् मान चुकी थी।

एक दिन की बात है कि मैं आँख कमजोर होने से उसमें मोती का अंजन लगा रही थी। गणेशप्रसाद ने कहा- 'माँ! मैं भी लगाता हूँ।' मैंने कहा- 'बेटा तेरे योग्य नहीं।' परन्तु वह नहीं माना। लगाने से उसकी आँख में कुछ पीड़ा देने लगा, आँख आँसुओं से भर गई और गुस्से में आकर उसने शीशी फोड़ डाली, सोलह रुपया का नुकसान हुआ। मैंने कहा- 'बेटा! नुकसान किसका हुआ? फिर दूसरी शीशी मंगाओ।'।

एक बात इसमें सबसे उत्तम यह थी कि दुःखी

आदमी को देखकर उसके उपकार की चेष्टा करने में नहीं चुकता था। यदि इसके पहिने का भी वस्त्र होता और किसी को आवश्यकता होती तो यह दे देता था। एक बार यह शिखरजी में प्रातःकाल शौचादि क्रिया को गया था, मार्ग में एक बुढ़िया ठण्ड से कप रही थी। यह जो चदर ओढ़े था उसे दे आया और काँपता-काँपता धर्मशाला में आया। मैंने कहा- 'चदर कहाँ है?' बोला- 'एक बुढ़िया को दे आया हूँ।'

एक बार इसको मैंने छह सौ रुपये की हीरा की अँगूठी बनवा दी। इसने अपने गुरु अम्बादास शास्त्री को दे दी और मुझसे छह मास तक नहीं कहा। भय भी करता था। अन्त में मैंने जब जोर देकर कहा कि अँगूठी कहाँ है? तब बोला वह तो मैंने अष्टसहस्री पूर्ण होने की खुशी में शास्त्री जी को दे दी.... इस तरह मेरी जो आय होती थी वह प्रायः इसी के खर्च में जाती थी।

कुछ दिन के बाद मैं सिमरा छोड़कर बरुआसागर आ गई, किसानों के ऊपर जो कर्ज था सब छोड़ दिया और मेरे रहने का जो मकान था वह मंदिर को दे दिया। केवल दस हजार की सम्पत्ति लेकर सिमरा से बरुआसागर आ गई और सर्राफ मूलचन्द्र जी के यहाँ रहने लगी। वे सौ रुपया मासिक ब्याज उपार्जन कर मुझे देने लगे।

कुछ दिनों के बाद सागर आ गई और सि. बालचन्द्र जी सवाल नवीस के मकान में रहने लगी। आनन्द से दिन बीतें। यहाँ पर सिंघई मौजीलाल जी बड़े धर्मात्मा पुरुष थे। वह निरन्तर मुझे शास्त्र सुनाने लगे। कटरा में प्रायः गोलापूर्वसमाज के घर हैं। प्रायः सभी धार्मिक हैं। यहाँ पर स्त्री समाज का मेरे साथ घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया। यहाँ अधिकांश घरों में शुद्ध भोजन की प्रक्रिया है। मैं जिस मकान में रहती थी उसी में कुन्दनलाल घीवाले भी रहते थे, जो एक विलक्षण प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। इस प्रकार मेरा तीस वर्ष का काल सागर में आनन्द से बीता। अन्त में कटरा संघ के साथ यह मेरी अन्तिम यात्रा है। मेरा अधिकांश जीवन धर्मध्यान में ही गया। मेरी श्रद्धा जैन धर्म में ही आजन्म से रही। पर्याय भर

में मैंने कभी कुदेव का सेवन नहीं किया। केवल इस बालक के साथ मेरा स्नेह हो गया। सो उसमें भी मेरा यही अभिप्राय रहा कि यह मनुष्य हो जावे और इसके द्वारा जीवों का कल्याण हो। मेरा भाव यह कभी नहीं रहा कि वृद्धावस्था में यह मेरी सेवा करेगा। अस्तु, मेरा कर्तव्य था, अतः उसका पालन किया।

हे प्रभो! यह मेरी आत्मकथा है जो कि आपके ज्ञान में यद्यपि प्रतिभासित है, तथापि मैंने निवेदन कर दी, क्योंकि आपके स्मरण से कल्याण का मार्ग सुलभ हो जाता है, ऐसा मेरा विश्वास है।... इत्यादि आलोचना कर बाई जी ने व्रत ग्रहण किया फिर वहाँ से चलकर हम सब तेरापन्थी कोठी में आ गये।

यहाँ पर पं० पन्नालाल जी ने कहा कि 'बाई जी का स्वास्थ्य अच्छा नहीं, अतः यहीं पर रह जाओ। हम सब उनकी वैयावृत्त्य करेंगे।' परन्तु बाई जी ने कहा- 'नहीं,' यद्यपि स्थान उत्तम है, परन्तु सर्व साधन नहीं। अतः मैं जाऊँगी। वहाँ ही सर्व साधन की योग्यता है।

दो दिन रहकर गया आये। यहाँ पर श्री बाबू कन्हैयालाल जी ने बहुत आग्रह किया, अतः दो दिन यहाँ रहना पड़ा। श्री बाई जी का निमन्त्रण बाबू कन्हैयालाल जी यहाँ था। उनकी धर्मपत्नी ने बाई जी का सम्यक् प्रकार से स्वागत किया। बाई जी की चेष्टा देखकर उसे एकदम भाव हो गया कि अब बाई जी का जीवन थोड़े दिन का है। उसने एकान्त में मुझे बुलाकर कहा कि, 'वर्णीजी! मैं आपको बड़ा मानती हूँ, परन्तु एक बात आपके हित की कहती हूँ। वह यह कि जब तक बाई जी का स्वास्थ्य अच्छा न हो, उन्हें छोड़कर कहीं नहीं जाना, अन्यथा आजन्म आपको खेद रहेगा। मैंने उनकी आज्ञा शिरोधार्य की।

वहाँ से कटनी आये। श्वासरोग बाई जी को दिन-दिन त्रास देने लगा। कटनी में मंदिरों के दर्शनकर सागर के लिये रवाना हो गये और सागर आकर यथास्थान धर्मशाला में रहने लगे।

'मेरी जीवनगाथा' / भाग १ /

पृष्ठ ४००-४०७ से साभार

जिनवाणी का उद्गम और उसका विकास

पं० तेजपाल जी काला

जिन्होंने ज्ञानावरणादि चार घातिया कर्मों पर विजय प्राप्त कर सर्वज्ञता और सर्वदर्शिता प्राप्त कर ली है, उन्हें अरहंत परमात्मा अथवा कर्मविजेता 'जिन' कहते हैं। अनादिकाल से प्रत्येक उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी के कल्पकाल में ऐसे असंख्य जिन होते हैं, जो अपनी आयु के अंत में शेष अघातिया कर्मों का भी नाश कर मोक्ष में चले जाते हैं, उन्हें 'सिद्ध' कहते हैं। अनंत और अविनाशी सुख के स्थान मोक्ष को छोड़ फिर ये सिद्ध परमात्मा कभी संसार में आकर जन्म-मरण के चक्र में नहीं फँसते।

यद्यपि मोक्ष जाने के पूर्व प्रत्येक कल्पकाल में असंख्य जिन होते हैं तथापि उनमें से प्रत्येक उत्सर्पिणी एवं अवसर्पिणी काल में जो २४-२४ तीर्थंकर होते हैं उनके द्वारा ही 'जिन' अवस्था में समवशरण सभा में दिव्यध्वनि के माध्यम से दिव्योपदेश होता है। यह दिव्यध्वनि सर्वज्ञ-वाणी होने से निर्दोष, सर्वप्राणी हितैषी और मंगलमय होती है अतः प्रमाणभूत होती है।

जिनमुख से उत्पन्न होने से इसको जिन-वाणी भी कहते हैं। वर्तमान अवसर्पिणी के चतुर्थकाल के प्रारम्भ में भगवान् ऋषभदेव आद्य तीर्थंकर हुए, उनके द्वारा संसार को आत्मकल्याणकारी वास्तविकधर्म का स्वरूप समझाया गया। धर्म का आल्हादकारक, सुखप्रदायक प्रकाश सर्वत्र फैला। असंख्यप्राणियों का अज्ञान और मिथ्यात्वांधकार तिरोहित हुआ। इस जिनवाणी के उद्गम की परम्परा इस हुण्डावसर्पिणी काल में भगवान् ऋषभदेव और उनके अनंतर प्रत्येक तीर्थंकर के समय में तत्कालीन तीर्थंकर के द्वारा केवलज्ञान प्राप्त कर लेने पर समवशरणसभा होती रही। असंख्य प्राणियों ने उसे सुना और वे आत्मकल्याण के वीतराग धर्म को अपनाकर परमसुखी परमात्मा बन गये।

अंतिम तीर्थंकर भगवान् महावीर की भी जिनवाणी उनके द्वारा ४२ वर्ष की अवस्था में सर्वज्ञता प्राप्त कर लेने पर राजगृही के पास विपुलाचलपर्वत पर इन्द्राज्ञा से कुबेर द्वारा रचित अत्यंत सुंदर, लोकातिशायी, महान वैभवशाली समवशरण-सभा में हुई। इस अत्यंत भव्यसमवशरणसभा में विशाल १२ कक्ष थे जिनमें मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका, पशु-पक्षी एवं चतुर्निकाय के देव-देवियाँ अपने-अपने लिए नियोजित कक्ष में बैठकर भगवान् का धर्मोपदेश सुनते थे। भगवान् महावीर की

दिव्य एवं लोकोपकारी वाणी को उनके प्रमुखशिष्य मनःपर्यय ज्ञानधारी इन्द्रभूति गौतम गणधर ने द्वादशांग के रूप में निबद्ध कर प्राणियों को समझाया, उनको प्रबुद्ध किया। इस द्वादशांगरूप जिनवाणी में ऐसा कोई विषय शेष नहीं रहा जिस पर विशद् प्रकाश नहीं डाला गया हो। विपुलाचल पर्वत पर कई दिनों तक भगवान् महावीर की धर्मदेशना चली। उसके अनंतर लगातार बारह वर्ष तक निर्वाण गमन से पूर्व तक यह धर्म-देशना अनेक पृथक्-पृथक् प्रदेशों और राज्यों में समवशरण के माध्यम से होती रही।

इस धर्मदेशना का प्रभाव जनसाधारण पर और राजा-महाराजाओं पर खूब पड़ा। राजा-महाराजाओं ने, जो उस समय के प्रचलित हिंसामय धर्मों मिथ्यामतों में फस गये थे। उनका परित्याग कर दिया और वे प्रायः सभी भगवान् महावीर के धर्म देशना के झंडे के नीचे आ गये। क्रूर हिंसा से पूर्ण यज्ञ-यागादि की ज्वाला नष्ट हो गई। अहिंसा को धर्मरूप में सबने अपनाया था। अधर्म और पाप के रूप में जो संसार में उस समय भयंकर विषमता फैल गई थी। धर्म के नाम पर कलह, विसवांद और संघर्ष होते थे उन सबको दूर करने के लिए भगवान् महावीर ने अहिंसा के साथ-साथ सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह और स्याद्वाद के लोक हितैषी और आत्मशान्ति कारक सिद्धान्त दिये। आज अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीर का ही धर्मशासन चल रहा है और यह धर्मशासन इस अवसर्पिणी के पंचमकाल के अंत तक चलेगा।

अतः यह लोक कल्याणकारी अहिंसा, अपरिग्रह और स्याद्वाद का द्वादशांग रूप धर्मशासन जिस धर्मदेशना (जिनवाणी) के आधार पर चल रहा है उसके उद्गाता अंतिम तीर्थंकर भगवान् महावीर हैं। जिस दिन यह जिनवाणी भगवान् महावीर के मुख से सर्व प्रथम विपुलाचल पर्वत पर खिरी वह मंगलमय दिवस श्रावण कृष्णा प्रतिपदा का था।

भगवान् महावीर के निर्वाण के पश्चात् इन्द्रभूति (गौतमस्वामी), सुधर्मास्वामी और जम्बुस्वामी ये तीन केवली हुए उनके बाद पाँच श्रुतकेवली हुए जिन्होंने भगवान् महावीर की देशना को द्वादशांगरूप में प्रचारित किया। अंतिम श्रुतकेवली भद्रबाहु के बाद काल के अनुसार ज्ञान में क्षीणता आती गई और द्वादशांगरूप श्रुतज्ञान की

स्मृति भी कम होती गई। शिष्यपरम्परा से अंगज्ञान क्षीण होते-होते अंत में एक आचार्य लोहाचार्य नाम के हुए जिन्हें एक अंग का ज्ञान शेष रहा था। यह सर्वकाल भगवान महावीर के अनंतर ६८३ वर्ष का था।

इसके पश्चात् अंगज्ञान भी क्षीण होता चला गया। अंत में धरसेनाचार्य नामक एक आचार्य हुए जिन्हें मात्र अग्रायणी पूर्व का ज्ञान था और वे अष्टांग महानिमित्त के महानज्ञाता थे तब उन्हें इस जिनवाणी के शेष अंशमात्र श्रुतज्ञान के भी लुप्त हो जाने की चिंता हुई। अतः उन्होंने संसार के जीवों के कल्याण हेतु उस अंशमात्र श्रुतज्ञान की रक्षा के लिये अपना ज्ञान उस समय के विशिष्ट महाज्ञानी तपस्वी महामुनि पुष्पदंत और भूतबली को दिया। इन दोनों विद्वान् महातपस्वी साधुओं ने गुरुपरम्परा से प्राप्त जिनवाणी को षट्खंडागम नामकग्रंथ में लिपिबद्ध कर लुप्त होनेवाली जिनवाणी के अंश का विकास करने का प्रथम श्रेय प्राप्त किया।

जिस दिन यह षट्खण्डागम नामकग्रंथ लिपिबद्ध होकर पूर्ण हुआ वह दिन ज्येष्ठशुक्ला पंचमी का था। उस दिन अंकलेश्वर (सौराष्ट्र) में चतुःसंघ ने उस ग्रंथ को महान भक्ति पूर्वक वेष्टन में बांधकर बड़ी भारी श्रद्धा और प्रभावना के साथ उसकी अष्टद्रव्य से पूजा की। अतः यह मंगलमय दिवस श्रुतपंचमी के नाम से प्रसिद्ध हो गया।

उसके अनंतर श्री वीरसेनाचार्य ने षट्खंडागम के पांचखण्डों की ७२ हजार श्लोक प्रमाण विस्तृत टीका की, जो धवला टीका नाम से प्रख्यात है। छठे खण्ड की २० हजार श्लोक प्रमाण जयधवला टीका कर वे संन्यस्त हो गये। उनके बाद उनके महान् विद्वान् शिष्य महापुराण-ग्रंथ के रचयिता आचार्य जिनसेन ने छठे खंड की अपूर्ण टीका को ४० हजार श्लोक प्रमाण रचकर जयधवला टीका पूर्णकर अपने गुरु के कार्य को पूर्ण किया। इस प्रकार १ लाख ३२ हजार श्लोक प्रमाण विशाल-टीकाग्रंथ अन्य किसी धर्म का आज उपलब्ध नहीं है।

इसके पश्चात् तो अनेक महान् जैनआचार्य हुए जिन्होंने गुरु परम्परा से प्राप्त जिनवाणी के अनुसार चतुरनुयोग सम्बंधी अनेक महान् ग्रंथों की संस्कृत-प्राकृत भाषा में रचनाएँ कीं और उनकी टीकाएँ कर संसार का महान् उपकार किया है। उनमें गुणधराचार्य, कुन्दकुन्दाचार्य, यतिवृषभाचार्य, उमास्वामी, समन्तभद्र, पूज्यवाद,

अकलंकदेव, गुणभद्र, विद्यानंदि, अमृतचन्द्राचार्य, जयसेनाचार्य, सोमदेव, जयसिंहनंदि, नेमिचंद्र सिद्धांत-चक्रवर्ती आदि अनेकानेक आचार्य हुए हैं, जिन्होंने अपने सम्यक्ज्ञान रूप दिव्यप्रकाश से संसार को साहित्य रचनाएं प्रदान करके आलोकित किया है।

भगवान्-महावीर के पश्चात् एक ऐसे महान् विद्वान् तपस्वी हुए हैं जिन्होंने समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, रयणसार, पंचास्तिकाय, मूलाचार और अष्टपाहुड़ आदि अनेक प्राभृत ग्रंथों की अध्यात्म प्रधान शैली में रचनाएँ की हैं। बारसअणुवेक्खा और प्राकृत दशभक्तियां भी आपकी अमूल्य रचनाएँ हैं। तमिलभाषा में एक कुरलकाव्य भी है जो आपकी रचना माना जाता है जो कि तमिलसाहित्य का अनुपमरत्न है।

तत्त्वार्थ सूत्र के रचयिता श्री उमास्वामी आचार्य महान् विद्वान् आचार्य हुए हैं, जिन्होंने संस्कृत भाषा में सूत्ररूप ग्रंथों की रचना का सूपात किया। तत्त्वार्थसूत्र नामक अनुपमग्रंथ के माध्यम से आपने मोक्षमार्ग का निरूपण करते हुए १० अध्यायों में सप्त तत्त्वों का यथार्थ स्वरूप प्रतिपादित किया है। आपके इस ग्रंथ पर अनेक विद्वान् आचार्यों ने विद्वत्ता पूर्ण बड़ी-बड़ी संस्कृत टीकाएँ रची हैं।

प्रतिभाशाली महान् आचार्यों की इस शृंखला में पूज्यवाद आचार्य का नाम भी जैन जगत् में अत्यंत गौरव के साथ लिया जाता है, उन्होंने अपनी अमूल्यकृतियों से जिनवाणी के रहस्य को खोलकर संसार के समक्ष उपस्थित किया है। समन्तभद्राचार्य ने जैनेन्द्र व्याकरण, समाधिशतक, इष्टोपदेश आदि स्वतंत्र रचनाएँ निर्मित की हैं। इसके अलावा संस्कृत दशभक्तियों की रचना भी आपने की है। तत्त्वार्थसूत्र पर सवार्थसिद्धि नामक टीका-ग्रंथ जैन जगत् में अनुपम टीकाग्रंथ है वर्तमान के उपलब्ध ग्रंथों में तत्त्वार्थसूत्र पर सर्वप्रथम टीकाग्रंथ है। जिनाभिषेकग्रंथ भी आपका माना जाता है।

आचार्य विद्यानन्दि भी महान् प्रतिभाशाली आचार्य हुए हैं, जिन्होंने तत्त्वार्थसूत्र पर श्लोक वार्तिकालंकार नाम विशदटीका दार्शनिक शैली में रचा है। इसी प्रकार अष्टसहस्री नामक टीकाग्रंथ समन्तभद्राचार्य के देवागम-स्तोत्र पर रचा गया है। स्वोपज्ञटीकासहित आप्तपरीक्षा आपकी स्वतंत्र रचना है। इसके अतिरिक्त भी आपने विद्यानन्द महोदय, सत्यशासनपरीक्षा आदि कई ग्रंथों का प्रणयन किया है।

दार्शनिक शैली के ग्रंथकार जैन आचार्यों की शृंखला में पात्र केसरीआचार्य का नाम भी प्रसिद्ध है। वे उच्चकोटि के विद्वान्-आचार्य थे उन्होंने पात्रकेसरी स्तोत्र, त्रिलक्षणकदर्शन आदि ग्रंथों की रचनाकर जिनधर्म के उद्योत में अपना अपूर्व योगदान दिया है।

आचार्य अकलंकदेव भी अद्वितीय प्रतिभा के धनी महान् आचार्य हुए हैं उनकी विद्वत्ता भी नामानुसार अकलंक ही थी। इनके समय में बौद्धदर्शन का बहुत जोर था, अतः अन्य दर्शनों की अपेक्षा बौद्धदर्शन की विशेष समीक्षा आपके ग्रंथों में पायी जाती है। दर्शनिक प्रधान आपकी रचनाएं स्वतंत्र और टीकाग्रंथों के रूप में जैनसाहित्य की अनुपम निधियां हैं। तत्त्वार्थवार्तिक तत्त्वार्थसूत्र की टीका है। अष्टशती देवागमस्तोत्र की टीका है। इसके अतिरिक्त अकलंकस्तोत्र, लघीयस्त्रय, न्यायविनिश्चय, सिद्धिविनिश्चय और प्रमाणसंग्रह आदि स्वतंत्र रचनारूप में प्रमुखग्रंथ हैं।

जिनसेनाचार्य की प्रतिभा और विद्वत्ता तो अवर्णनीय थी। उनका बनाया हुआ प्रथमानुयोग का महान् पुराणग्रंथ महापुराण काव्यग्रंथों में जैनसाहित्य की ही नहीं, संसार की समस्त साहित्यकृतियों में एक महान् रचना है। लगभग ४० हजार श्लोक प्रमाण आपकी जयधवलाटीका का उल्लेख मैं पहले ही कर आया हूँ। इसके अतिरिक्त पार्श्वार्थ्युदय काव्य भी काव्य संसार में एक श्रेष्ठ कृति है।

जिनसेनाचार्य के ही विद्वान् शिष्य गुणभद्राचार्य ने उत्तर पुराण रचकर भगवान् ऋषभदेव और भरतचक्रवर्ती को छोड़ समस्त शलाका पुरुषों का जीवन चरित्र आठ हजार श्लोकों में निबद्ध किया है। इसके अतिरिक्त आत्मानुशासन भी आपकी अनुपम रचना है। जिनदत्तचरित्र भी आपकी ही रचना माना जाता है।

श्री नेमिचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्ती के द्वारा रचित करणानुयोग प्रधान ग्रंथ है। जो करणानुयोग का प्रसिद्ध ग्रंथ है। षट्खंडागम के आधार पर गोम्मटसार (जीवकाण्ड व कर्मकाण्ड) लब्धिसार-क्षपणासार का प्रणयन किया तथा त्रिलोक का वर्णन करनेवाला त्रिलोकसारग्रंथ भी आपने ही निर्मित किया है। आपकी इन रचनाओं से जैनजगत का महान् उपकार हुआ है।

अमृतचन्द्राचार्य कुन्दकुन्दाचार्य द्वारा विरचित समय-सारादिग्रंथों के विशेष टीकाकार आचार्य हुए हैं। समयसार, प्रवचनसार व पंचास्तिकाग्रंथों पर आत्मख्याति आदि टीकाओं का प्रणयन आपने किया। आपने स्वतंत्ररूप से तत्त्वार्थसार और पुरुषार्थसिद्धयुपायग्रंथ का निर्माण भी किया है।

कुन्दकुन्दाचार्य के ही उक्त तीन ग्रंथों पर जयसेनाचार्य ने तात्पर्यवृत्ति आदि टीकाएं निर्मित कर कुन्द-कुन्द और अमृतचन्द्र आचार्य के मन्तव्यों को एवं विषय प्रतिपादन को समझने में सुविधा प्रदान की है।

आचार्य सोमदेवसूरि का यशस्तिलकचम्पू और नीतिवाक्यामृत तथा वादीभसूरिका, छत्रचूडामणि एवं गद्य चिंतामणि काव्यग्रंथ भी जैनजगत की अनुपम निधियां हैं। इसी प्रकार देवसेनाचार्य, माणिक्यनंदि, शुभचन्द्राचार्य आदि अनेक उद्भट विद्वान् तपस्वी आचार्य हुए हैं, जिन्होंने चारों अनुयोगों पर महान् विद्वत्तापूर्ण रचनाएं कर जिनवाणी के रहस्य को खोलने में और संसार में उसका दिव्य-प्रकाश फैलाने में बड़ाभारी श्रम किया है।

सचमुच में यदि इन उपकारकबुद्धि आचार्यों ने संसार के कल्याणार्थ अपने तपस्वी जीवन का बहुमूल्य समय जिनवाणी के रहस्योद्घाटन में न दिया होता तो संसार धर्म और वास्तविक स्वरूप को जानने में अज्ञात रहता। दिगम्बर जैन जगत के सभी महान् आचार्य जिनवाणी के सच्चे सपूत कहे जा सकते हैं जिन्होंने जिनवाणी की जन्मभर सेवा की और जिनवाणी को विकास में लाकर समीचीन धर्म का प्रकाश संसार को दिया। धन्य हैं वे आचार्य और धन्य हैं उनकी बहुमूल्य साहित्यकृतियां जिन पर भगवान् महावीर का अनुयायी जैन समाज गौरवान्वित है।

दिगम्बर जैनाचार्यों ने जैसे रत्नत्रयधर्म के विभिन्न अंगों पर अपनी रचनाएँ की वैसे ही आयुर्वेद, छंद, अलंकार, व्याकरण, मंत्र, यंत्र, काव्य आदि विभिन्न विषयों पर भी, जो द्वादशांग के ही भाग हैं, प्रकाश डाला है। उग्रदित्याचार्य का आयुर्वेदसंबंधी कल्याणकारकग्रंथ और श्री मानतुंगाचार्य, कुमुदचन्द्राचार्य, वादिराजसूरि के काव्य भी भक्तिरस की बहुमूल्यकृतियां हैं। जिनागम की ये बहुमूल्यकृतियां अब देश-विदेशों में भी विश्वविद्यालयों में पढ़ाई जाने लगी हैं। संसार के विचारशील विद्वान् और छात्र जिनवाणी के अहिंसा, अपरिग्रह और अनेकांत जैसे तत्त्वों के यथार्थ स्वरूप को हृदयंगम करते हैं तो उनको सम्यग्ज्ञान प्राप्त करने का आनन्द होता है।

आज आवश्यकता इस बात की है कि जिनवाणी के इन लोक कल्याणकारी चतुरनुयोग के ग्रंथों को विभिन्न भाषाओं में अनुदित कर उनको प्रचार में लाने की योजना पर विचार किया जावे।

सम्पादक : जैनदर्शन, नांदगाँव

विदेशी संग्रहालय में महत्त्वपूर्ण प्रतिमाएँ

डॉ० ब्रजेन्द्रनाथ शर्मा
राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली

जैनधर्म भारत में प्रचलित विभिन्न धर्मों में अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है। इस धर्म के अनुयायी भारत के प्रायः सभी भागों में पाये जाते हैं। ये अनुयायी मुख्यतः दो प्रमुख सम्प्रदायों—दिगम्बर एवं श्वेताम्बर में विभक्त हैं। दिगम्बर सम्प्रदाय के अनुयायी अपनी देवमूर्तियों को बिना किसी साज-सज्जा के पूजते हैं। जबकि श्वेताम्बर अपनी पूज्य प्रतिमाओं को सुन्दर मुकुट एवं विभिन्न आभूषणों से सजाकर उनकी पूजा-आराधना करते हैं। भारत में पाई गयी प्राचीनतम प्रतिमायें नग्न हैं, क्योंकि उस समय केवल दिगम्बरसम्प्रदाय का ही प्राबल्य था। परन्तु शताब्दियों पश्चात् श्वेताम्बर सम्प्रदाय से सम्बन्धित जैन प्रतिमाओं का भी निर्माण होने लगा और इस प्रकार अब दोनों प्रकार की प्रतिमायें आज भी भारत के विभिन्न भागों में उनके अनुयायियों द्वारा पूजी जाती हैं।

प्रारम्भ में अनेक जैन विद्वानों का विचार था कि उनके द्वारा प्रतिपादित धर्म अब से हजारों साल पूर्व भी विद्यमान था और जब सन् १९१२ में हड़प्पा एवं मोहनजोदड़ो की खुदाई में नग्न मानव-धड़ एवं ऐसी अन्य पुरातत्वीय महत्त्व की वस्तुएँ प्राप्त हुईं, तो उन विद्वानों ने उनको भी जैनधर्म से सम्बन्धित ठहराया। परन्तु अनेक आधुनिक विद्वानों ने शोधके आधार पर इस प्रचलित धारणा का खण्डन करते हुए उन्हें प्राचीनतम यक्ष प्रतिमाओं का प्रतिरूप बतलाया है।

यद्यपि जैन साहित्य से यह प्रमाणित है कि स्वयं भगवान् महावीर के समय, छठी शताब्दी ईसवी पूर्व में ही उनकी चन्दन की प्रतिमा का निर्माण हो चुका था, परन्तु पुरातात्विक खोजों के आधार पर अब तक सबसे प्राचीन जैन प्रतिमा मौर्यकला, लगभग तीसरी सदी ई० पूर्व की ही मानी जाती है। पटना के समीप लोहानीपुर के इस काल का एक नग्न धड़ प्राप्त हुआ है, जो अब पटना संग्रहालय में प्रदर्शित है। यह अपनी तरह का एक बेजोड़ उदाहरण है। बलुआ पत्थर के बने इस धड़पर मौर्यकालीन चमकदार पालिस आज भी विद्यमान है, जिसका कोटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में वज्र-लेप के नाम से उल्लेख किया है। इस नग्न धड़ में 'जिनको

स्पष्ट रूप से कायोत्सर्ग मुद्रा में दिखाया गया है। इसी से काफी साम्य रखता, परन्तु पालिसरहित एक अन्य धड़ शृंगकाल का माना जाता है, पटना संग्रहालय में ही प्रदर्शित है। शृंगकाल के पश्चात् कुषाणकाल में जैन आयागपटों एवं स्वतंत्र प्रतिमाओं का निर्माण अधिकाधिक रूप से होने लगा। मथुरा के विभिन्न भागों से प्राप्त अनेक कुषाण एवं गुप्तकालीन प्रस्तर मूर्तियाँ स्थानीय राजकीय संग्रहालय तथा राज्य संग्रहालय लखनऊ में विद्यमान हैं जिनसे जैन देवप्रतिमाओं के विकास की पूर्ण श्रृंखला का आभास सरलता से हो जाता है।

विदेशों में रहने वाले कलाप्रेमियों का ध्यान जब जैन मूर्तिकलाकी और आकर्षित हुआ, तो धीरे-धीरे उन्होंने भी भारत से मूर्ति सम्पदा को अपने-अपने देशों में ले जाकर संग्रहालयों में प्रदर्शित किया। भारत की भाँति प्रायः सभी विदेशी संग्रहालयों में जैनकला सम्बन्धी एक-से एक सुन्दर उदाहरण देखने को मिलते हैं। इस सभी की एक लेख में विवेचना करना अत्यन्त कठिन कार्य है। अतः यहाँ हम आठ प्रमुख पश्चात्य देशों में स्थित पन्द्रह प्रमुख संग्रहालयों में जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण जैन प्रतिमाएँ सुरक्षित हैं, उनका ही संक्षेप में वर्णन प्रस्तुत कर रहे हैं। ये संग्रहालय मुख्यतः ब्रिटेन, फ्रांस, इटली, बुलगेरिया, जर्मनी स्विटजरलैंड डेनमार्क एवं अमेरिका में स्थित हैं।

१. ब्रिटेन : अ— ब्रिटिश संग्रहालय, लन्दन

लन्दन स्थित इस विख्यात संग्रहालय में मथुरा से प्राप्त कई जिनशीर्षों के अतिरिक्त उड़ीसा से मिली एक पाषाण मूर्ति भी है, जिसमें आदिनाथ एवं महावीर को साथ-साथ कायोत्सर्ग मुद्रा में दर्शाया गया है। पीठिकापर आदिनाथ और महावीर लाञ्छन वृषभ तथा सिंहों का अंकन हैं। इसके साथ ही उपासिकाओं की मूर्तियाँ भी बनी हैं। कलाकी दृष्टि से यह मूर्ति ग्यारहवीं सदी में बनी प्रतीत होती है।

उड़ीसा में ही प्राप्त नेमिनाथ की यक्षी अम्बिका की लगभग उपर्युक्त प्रतिमा की समकालीन मूर्ति भी यहाँ विद्यमान है जिसमें वह आम्रवृक्ष के नीचे खड़ी

है। इनका छोटा पुत्र प्रभंकर गोद, में व बड़ा पुत्र शुभंकर दाहिनी ओर खड़ा हुआ है। मूर्ति के ऊपरी भाग में नेमिनाथ की लघु मूर्ति ध्यान मुद्रा में है तथा पीठिका पर देवी का वाहन सिंह बैठा दिखाया गया है।

इस संग्रहालय में मध्यप्रदेश से प्राप्त सुलोचना, धृति, पद्मावती, सरस्वती तथा यक्ष एवं यक्षी की सुन्दर प्रस्तर मूर्तियाँ भी विद्यमान हैं। अन्तिम मूर्ति की पीठिका पर अनन्तवीर्य उत्खनित है।

ब- विक्टोरिया एवं एलबर्ट संग्रहालय, लन्दन

इस संग्रहालय में कुषाण एवं गुप्त कालों की भगवान् ऋषभ की दो मूर्तियाँ प्रदर्शित हैं। साथ ही, मध्यप्रदेश के ग्यारसपुर नामक स्थान से लाई गयी तीर्थंकर पार्श्वनाथ की अद्वितीय मूर्ति भी विद्यमान है जो सातवीं सदी की प्रतीत होती है। इसमें तेइसवें तीर्थंकर ध्यान मुद्रा में विराजमान हैं और मेघकुमार एक बड़े तूफान के रूप में उनपर आक्रमण करता दिखाया गया है। साथ ही, नागराज धरणेन्द्र अपने विशाल फण फैलाकर उनकी पूर्ण सुरक्षा करता दर्शाया गया है और उसकी पत्नी एक नागिनी के रूप में तीर्थंकर के ऊपर अपना छत उठाये हुए है। मूर्ति के ऊपरी भाग में जिनकी कैवल्य प्राप्ति पर दिव्य गायक नगाड़ा बजाता भी दिखाया गया है। प्रस्तुत मूर्ति जैन मूर्तिकला की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्व की है।

उपर्युक्त मूर्ति के समीप ही, सोलहवें तीर्थंकर भगवान् शान्तिनाथ की एक विशाल धातु प्रतिमा प्रदर्शित है जिसमें वह सिंहासन में ध्यानमुद्रा में बैठे हैं। इसके दोनों ओर एक-एक चँवरधारी सेवक खड़ा है मूर्तिपर विक्रम संवत् १२२४ (११६८ ई०) के खुदे लेख से ज्ञात होता है कि राजस्थान में चौहान शासकों के समय इसकी प्रतिष्ठापना नायल-गच्छ के अनुयायियों द्वारा की गई थी।

२. फ्रांस : म्यूजिगिमे पेरिस

इस संग्रहालय में कई जैन प्रतिमाएँ हैं, जिसमें चौबीसवें तीर्थंकर भगवान् महावीर की कांस्य मूर्ति विशेष रूप से सुन्दर है। इसमें वह एक सिंहासन पर ध्यान मुद्रा में बैठे हैं। उनकी दाहिनी ओर तेइसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ सर्प फनों के नीचे कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े हैं और बाईं ओर बाहुबलि, जिनके शरीर पर लतायें लिपिटी हुई हैं, खड़े हैं। इस आशय की कांस्य की

मूर्तियाँ प्रायः कम ही पाई जाती हैं। कर्णाटक में निर्मित यह मूर्ति चालुक्य कला के समय (नवमी-दसवीं सदी) की बनी प्रतीत होती है। यहाँ राजस्थान के पूर्वी भाग से प्राप्त एक पाषाण सिरदल भी है जो कला का सुन्दर उदाहरण है। इसके नीचे वाली ताख में ध्यानी जिनकी मूर्ति निर्मित है और उनके दोनों ओर अन्य दो-दो तीर्थंकर कायोत्सर्ग मुद्रा में उत्कीर्ण किये मिलते हैं। यह तेरहवीं-चौदहवीं सदी की मूर्ति है।

३. डेनमार्क : राष्ट्रीय संग्रहालय, कोपेनहेगन

इस संग्रहालय में मुख्यतः आंध्रप्रदेश व कर्णाटक से प्राप्त जैन मूर्तियों का अच्छा संग्रह है। ये सभी मूर्तियाँ ११वीं-१२वीं सदी की हो सकती है। इस संग्रह में कई चालुक्य युगीन महावीर स्वामी की नग्न प्रतिमाएँ हैं, जिनमें उन्हें कायोत्सर्ग-मुद्रा में दर्शाया गया है। इसके अतिरिक्त, ऋषभनाथ की एक चौबीसी भी है जिसमें मूल प्रतिमा के दोनों ओर तथा ऊपरी भाग में अन्य तेईस तीर्थंकरों की लघु आकृतियाँ भी उत्कीर्ण की गई मिलती हैं। ये सभी मूर्तियाँ ध्यान मुद्रा में हैं।

४. इटली : राष्ट्रीय संग्रहालय, रोम

इस संग्रहालय में गुजरात में सन् १४५० ई० में बनी भगवान् नेमिनाथ की कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़ी मूर्ति मुख्य आकर्षण है। इनके दोनों ओर अन्य दो-दो तीर्थंकर खड़े व बैठे दिखाये गये हैं। मुख्य मूर्ति के पैरों के समीप उनके यक्ष एवं यक्षी गोमेध एवं अम्बिका भी बैठे दिखाये गये हैं। कलाकी दृष्टि से भी यह मूर्ति पर्याप्त रूप से सुन्दर है।

५. बुलगेरिया : रन्नग्रेड संग्रहालय, रन्नग्रेड

राजस्थान में लगभग ११वीं सदी ई० में निर्मित परन्तु उत्तर-पूर्वी बुलगेरिया में सन् १९२८ में पाई गई इस मूर्ति में तीर्थंकर को एक कलात्मक सिंहासनपर बैठे दिखाया गया है। अन्य प्रतिमाओं की भाँति इसके वक्ष पर भी कमल की पंखुड़ियों के समान श्रीवत्स चिन्ह अंकित है।

६. स्विटजरलेन्ड : रिटवर्ग संग्रहालय, ज्यूरिक

ज्यूरिक के इस सुप्रसिद्ध संग्रहालय में राजस्थान में चन्द्रावती नामक स्थान से प्राप्त भगवान् आदिनाथ की लगभग आदमकद प्रतिमा विद्यमान है, जो श्वेत संगमरमर की बनी है। इसमें उनको दो कलात्मक स्तम्भ के बीच कायोत्सर्ग मुद्रा में दिखाया गया है। इसके ऊपरी

भाग में त्रि-छत्र बना है। इन्होंने सुन्दर धोती धारण कर रखी है जिससे स्पष्ट है कि उसकी प्रतिष्ठापना श्वेताम्बर सम्प्रदाय के जैनियों द्वारा की गयी थी। पीठिकापर बने वृषभ के अतिरिक्त उनके चरणों के पास दानकर्ता एवं उनकी पत्नी तथा अन्य उपासकों की लघु मूर्तियों बनी हैं। कला की दृष्टि से यह मूर्ति परमार काल, लगभग बारहवीं सदीकी बनी प्रतीत होती है।

७. जर्मनी : अ- **म्यूजियम फर वोल्कुर कुण्डे, बर्लिन**

इस संग्रहालय में मथुरा क्षेत्र में प्राप्त कुषाणकाल (२-३ सदी) के कई जिन शीर्ष विद्यमान हैं। इस प्रकार के कई अन्य शीर्ष स्थानीय राजकीय संग्रहालय में भी देखने को मिलते हैं।

उपर्युक्त मूर्तियों के अतिरिक्त दक्षिण भारत में मध्यकाल में निर्मित कई जैन प्रतिमायें भी यहाँ पर प्रदर्शित हैं। इन सभी मूर्तियों में जिनको कार्यात्सर्ग मुद्रा में नग्न खड़े दिखाया गया है। इनके पैरों के समीप प्रत्येक तीर्थंकर के सेवकों तथा उपासकों की लघु मूर्तियाँ उत्कीर्ण की गई मिलती हैं।

ब- **म्यूजियम फर वोल्कुर कुण्डे, म्यूनिख :**

इस संग्रहालय में यक्षी अम्बिका की एक अत्यन्त भव्य प्रतिमा प्रदर्शित है जिसे पट्टिका पर दुर्गा बताया गया है। मध्यप्रदेश में प्राप्त लगभग अठारहवीं सदी की इस मूर्ति में देवी अपने आसनपर ललितासन में विराजमान है। इसके दाहिने हाथ में गुच्छा था, जो अब टूट गया है। और दूसरे हाथ से वह अपने पुत्र प्रियंकर को गोदी में पकड़े हुए है। इसका दूसरा पुत्र पैरों के समीप खड़ा है। देवी के शीश के पीछे बने प्रभामण्डल की दाहिनी ओर गजारूढ़ इन्द्राणी और बाईं ओर गरुडारूढ़ चक्रेश्वरी की मूर्तियाँ हैं, जिनके मध्य ऊपरी भाग में भगवान् नेमिनाथ की ध्यान मुद्रा में लघु मूर्ति उत्कीर्ण है। मूर्ति के नीचे के भाग में कई उपासक बैठे हैं जिनके हाथ अंजली-मुद्रा में दिखाये गये हैं।

८. अमेरिका : अ- **क्लीवलैण्ड कला संग्रहालय, क्लीवलैण्ड, ओहायो**

इस संग्रहालय में प्रदर्शित जैन मूर्तियों में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण मूर्ति पार्श्वनाथ की है जिसका निर्माण मालवा क्षेत्र में लगभग दसवीं सदी में हुआ था। लगभग आदमकद इस मूर्ति में पार्श्वनाथ सर्प के साथ फणों के नीचे कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े हैं और कमठ अपने

साथियों सहित उनपर आक्रमण करता दिखाया गया है। जैन साहित्य से ज्ञात होता है कि जब पार्श्वनाथ अपनी घोर तपस्या में लीन थे, तब दुराचारी कमठ ने अनेक विघ्न-बाधायें डालीं जिससे वे तपस्या न कर सकें और उसने उन पर घोर वर्षा की, पाषाण शिलाओं से प्रहार किया तथा अनेक जंगली जंतुओं से भय दिलाने का भरसक प्रयत्न किया। परन्तु इतना सब सहते हुये पार्श्वनाथ अपने पुनीत कार्य से जरा भी विचलित नहीं हुए और अपनी तपस्या पूर्ण कर ज्ञान प्राप्त करने में सफल रहे। परिणाम स्वरूप कमठ को लज्जित होकर उनसे क्षमा माँगी पड़ी। प्रस्तुत मूर्ति में सम्पूर्ण दृश्यको बड़ी सजीवता से दर्शाया गया है। यद्यपि इस आशय की अन्य प्रस्तर प्रतिमाएँ भारत के अन्य कई भागों से भी प्राप्त हुई हैं, परन्तु फिर भी यह मूर्ति अपनी प्रकार का एक अद्वितीय उदाहरण है।

ब- **बोस्टन कला संग्रहालय, बोस्टन, मैसाचुसैट्स**

इस संग्रहालय में मध्य प्रदेश से प्राप्त जैन मूर्तियों काफी अच्छा संग्रह है। इनमें अधिकतर तो प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ की मूर्तियाँ हैं, जिनमें से कुछ में वह ध्यान मुद्रा में तथा कुछ में कार्यात्सर्ग-मुद्रा में दर्शाये गये हैं। उन प्रतिमाओं के अतिरिक्त यहाँ एक अत्यन्त कलात्मक तीर्थंकर वक्ष भी है, जिसे संग्रहालय की पट्टिका में महावीर बताया गया है। परन्तु यहाँ यह उल्लेखनीय है कि प्रस्तुत मूर्ति में केश ऊपर को बँधे हैं और जटाएँ दोनों-ओर कंधों पर लटक रही हैं। इससे प्रतिमा के आदिनाथ होने की ही सम्भावना प्रतीत होती है। इनके शीश के दोनों ओर बादलोंमें उड़ते हुए आकाशचारी गन्धर्व और 'त्रिछत्र' के ऊपर आदिनाथ की ज्ञान-प्राप्ति की घोषणा करता हुआ एक दिव्य-वादक बना हुआ है। यह सुन्दर मूर्ति दसवीं सदीकी बनी प्रतीत होती है।

स- **फिलाडेल्फिया कला संग्रहालय, फिलाडेल्फिया**

इस संग्रहालय सबसे उल्लेखनीय जैन मूर्तियाँ जबलपुर क्षेत्र से प्राप्त कल्चुरिकालीन दसवीं सदी की हैं। इनमें से एक भगवान् महावीर की है, जिसमें उन्हें कायोत्सर्ग मुद्रा में दिखाया गया है। द्वितीय प्रतिमा में पार्श्वनाथ तथा नेमिनाथ को खड़े दिखाया गया है। पार्श्वनाथ की पहचान उनके शीश के ऊपर बने सर्प फणों से तथा नेमिनाथ की पहचान पीठिका पर उत्कीर्ण शंख से की जा सकती है।

द- सियाटल कला संग्रहालय, सियाटल

इस संग्रहालय में भी मध्य प्रदेश से प्राप्त कई मध्यकालीन जैन प्रतिमाएँ विद्यमान हैं। इसके अतिरिक्त यहाँ गुजरात से मिली भगवान् कुन्थुनाथ की एक पंचतीर्थी है, जिसकी पीठिका पर सन् १४४७ ई० का लघु लेख उत्कीर्ण है। साथ ही, यहाँ आबू क्षेत्र से प्राप्त नर्तकी नीलांजना की भी सुन्दर मूर्ति प्रदर्शित है, जिसका प्राचीनतम अंकन हमें मथुरा की कुषाण कला में देखने को मिलता है।

य- एसियन कला संग्रहालय, सेन फ्रांसिस्को, कैलिफोर्निया

इस संग्रहालय में भी देवगढ़ क्षेत्र से प्राप्त कई जैन मूर्तियाँ प्रदर्शित हैं, जिनमें जिन के माता-पिता की प्रतिमा काफी महत्त्व की है। यहीं पर अंबिका की भी एक सुन्दर मूर्ति विद्यमान है, जिसमें वह आम के वृक्ष के नीचे त्रिभंग-मुद्रा में खड़ी है और पैरों के निकट उसका वाहन—सिंह अंकित है।

र- बर्जीनिया कला संग्रहालय, रिचमोन्ड, बर्जीनिया

इस संग्रहालय में सबसे महत्त्वपूर्ण भगवान् पार्श्वनाथ की त्रितीर्थिक प्रतिमा है, जो राजस्थान में नवमी सदी में बनी प्रतीत होती है। इसमें मध्य में पार्श्वनाथ ध्यान मुद्रा में विराजमान हैं सर्प के फणों की छाया में, और उनके दोनों ओर एक-एक तीर्थकर को खड़ा दिखाया गया है। सिंहासन की दाहिनी ओर सर्वानुमूर्ति तथा बाईं ओर अम्बिका दर्शायी गयी हैं। सामने दो मृगों के मध्य धर्मचक्र तथा अष्ट-ग्रहों के सुन्दर अंकन हैं।

उपर्युक्त संक्षिप्त विवरण से विदित होता है कि जैनधर्म ने भारतीय मूर्तिकला के क्षेत्र में अपना एक विशिष्ट योगदान दिया है। सम्पूर्ण भारत के विभिन्न भागों में निर्मित देवालयों के अतिरिक्त देश-विदेश के अनेक संग्रहालयों में भी जैनधर्म से संबंधित असंख्यकला-मूर्तियाँ सुरक्षित हैं, जिनका वैज्ञानिक एवं पुरातात्विक दृष्टि से अध्ययन होना परमाश्यक है। अधिक नहीं, यदि सभी प्रतिमाओं के चित्रों को कालानुक्रम के आधार पर प्रकाशित किया जा सके, तो वह भी बड़ा पुनीत कार्य होगा और इससे न केवल जैनधर्मावलम्बियों, वरन् शोधकर्ताओं को भी बड़ा लाभ होगा।

दर्दों के हरकारे

मनोज जैन 'मधुर'

गीत हमारे संग में हँसते
संग में रोते हैं।
गीत रचयिता नहीं कभी
एकाकी होते हैं।
शब्द अर्थ के चंदा सूरज
ले भावों के तारे
ताना बाना बुनते रहते
बैठे नदी किनारे।
काँधों पर संसारसृजन का
अपना ढोते हैं।
मथ देते हैं युग चिंतन के
सागर को ये पल में
दिखला देते ये भविष्य को
वर्तमान के तल में
सारस्वत संगम में नित्य
लगाते गोते हैं।
वेद ऋचाओं से भी बढकर
इन्हें गीत की बोली

ढूँढ़ लिया करते गीतो में
ईद दशहरा होली।
मन की प्यास बुझानेवाले
मनहर सोते हैं।
गीत अमर है, कब मरता है
कभी किसी के मारे।
संवाहक ये गीत विद्या के
दर्दों के हरकारे
बीज गीत के
सदा सृष्टि में
गहरे बोते हैं।
गीत धरा का संस्कार है
गीत गगन की आशा
गीत शक्ति का तेज पुंज है
गीत हृदय की भाषा
गीत हमारे अंतर्मन
कल्मष धोते हैं।

सी एस १३, इंदिरा कॉलोनी
बाग उमराव दूल्हा, भोपाल -१०

जिनदेव और मिथ्यादेव की सच्ची समझ ही दिग्विजय

डॉ० राजेन्द्र कुमार बंसल

महान् कवि, वैद्य, वादी, वाग्मी, गमक, वादिमुख्य आदि पदवियों से विभूषित स्याद्वादी स्वामी समन्तभद्र ने यह कल्पना भी नहीं की होगी कि जिस आप्त की परीक्षा करने उन्होंने ने महान् दार्शनिक कृति 'देवागमस्तोत्र' की रचना की, वही आप्त कालांतर में रागी-द्वेषी देवी-देवताओं का पर्यायवाची बन जायेगा। यह कार्य कोई धर्मविद्वेषी नहीं करेंगे, किन्तु धर्म के नामपर जिनेन्द्रभक्तों द्वारा ही किया जायेगा, यह इसकी विशिष्टता होगी।

स्वामी समन्तभद्र ने श्रावकों को वीतरागता की प्राप्ति हेतु रत्नकरण्डश्रावकाचार नामक ग्रंथ की रचना की। श्लोक 3 में धर्म-अधर्म का लक्षण लिखा और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की एकता को धर्म कहा। श्लोक 4 में सच्चे आप्त-आगम-गुरुओं के श्रद्धान को सम्यग्दर्शन कहा। श्लोक 5 से 7 तक में आप्त (सच्चेदेव) का सामान्य-विशेष लक्षण बताया। सच्चे देव का निर्णय ही वह केन्द्र बिन्दु है, जिसके चारों ओर वीतरागी श्रमणसंस्कृति का धर्मचक्र प्रवर्तित होता है। अतः आप्त का निर्धारण महत्त्वपूर्ण है। अठारह दोषों से रहित सर्वज्ञ, आगम का ईश (उत्पादक) आप्त होता है। उसे ही परमज्योति परमेष्ठी, विराग, विमल, कृती, सर्वज्ञ, अनादिमध्यान्त, सार्व, शास्ता आदि कहते हैं। ऐसे आप्त की दिव्यध्वनि से राग-द्वेषविहीन मोक्ष और मोक्षमार्ग का जो उपदेश निःसृत हुआ वह आगम है। और आगमानुसार विषय कषायों की आसक्तिरहित, आरम्भ-परिग्रह-रहित, ज्ञान-ध्यान-तप में लीन तपस्वी गुरु कहलाते हैं। इस मापदण्ड के अनुरूप जो नहीं हैं, वे आप्त-आगम-गुरु नहीं है, यह स्पष्ट निष्कर्ष निकलता है।

स्वामी समन्तभद्र ने श्लोक 11 से 21 तक सम्यक्त्व के अंगों का वर्णन किया है। श्लोक 22 से 26 तक सम्यक्त्व के दोष, यथा-लोकमूढ़ता, देवमूढ़ता, पाखण्डमूढ़ता और आठ मदों का वर्णन किया है, पश्चात् श्लोक 27 से 41 तक सम्यग्दर्शन का माहात्म्य दर्शाया है।

श्लोक 23 में बताया गया है कि लौकिक इच्छाओं की पूर्ति हेतु (वर की इच्छा से) राग-द्वेष युक्त मलिन देवताओं की उपासना करना देवमूढ़ता अर्थात् देव (सच्चेदेव) के प्रति अज्ञान (मूढ़ता) है। जिनेश्वरी मार्ग

में आप्त की उपासना इच्छा-रहित की जाती है। लक्ष्य वीतरागता की प्राप्ति होता है। अतः लौकिक कामना की दृष्टि से आप्त की पूजा करना आप्त को कुदेव बनाना है। कुदेव की पूजा वर की इच्छा से होती है। बिना वर-की इच्छा के रागी-द्वेषी देवता की पूजा का कोई औचित्य ही नहीं होता। इसी कारण श्लोक में वर-इच्छा का लक्ष्य लिखा है। इसका अर्थ यह नहीं कि बिना वर-की-इच्छा के रागी-द्वेषी देवता की पूजा करना आगम सम्मत है, जैसा कि कतिपय विद्वानों का मत है। जिनागम में तो 18 दोषरहित देव ही पूज्य है, इस आदेशसूत्र को विस्मरण करना जिनागम से बाह्य विचार और आचरण है। इस प्रकार श्लोक 23 किसी भी रूप से रागी-द्वेषी देवता की, भले ही वे किसी भी गुणस्थान के हों, पूजा की अनुमति नहीं देता।

सम्यक्त्व का महत्त्व दर्शाते हुए, श्लोक 27 में कहा है कि जब सम्यक्त्व से पाप का निरोध होता है, तो अन्य सम्पदा का क्या प्रयोजन? स्पष्ट है कि सम्यक्त्वधारक व्यक्ति सम्पदा के प्रयोजन की इच्छा नहीं रखता। उसकी सम्पदा तो सम्यक्त्व ही है। श्लोक 28 में सम्यक्त्वसहित चाण्डाल को देवतुल्य कहा है, ऐसा गणधर देव कहते हैं। श्लोक 29 में कहा है कि सम्यग्दर्शन से युक्त कुत्ता स्वर्ग में जाकर देव हो जाता है, और पाप अर्थात् मिथ्यादर्शन से देव भी कुत्ता हो जाता है। श्लोक क्रमांक 28 और 29 में सम्यग्दर्शन की महिमा बताई है। सम्यग्दर्शन मोक्षमार्ग में खेवटिया के समान है। सम्यक्त्व के न होने पर सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चरित्र की उत्पत्ति नहीं होती (श्लोक 31-32)। सम्यक्त्वयुक्त गृहस्थ मोक्षमार्गी है जब कि मिथ्यात्वयुक्त मुनि मोक्षमार्गी नहीं है। फलितार्थ यह है कि सम्यक्त्वसहित व्रत-संयम-तप मोक्षमार्ग में कार्यकारी है। ये श्लोक देवी-देवताओं को आप्त (सच्चेदेव) सिद्ध करने में सहायक नहीं है, क्योंकि सम्यक्त्वसहित जीव मोक्षमार्गी होता है, इस दृष्टि से चारों गतियों के सम्यक्त्वधारी जीव समानरूप से प्रशंसनीय हैं। भवनवासी, व्यंतर देव-देवियों की कोई विशेषता नहीं।

श्लोक 30 पुनः इस तथ्य की पुष्टि करता है

कि जो सम्यग्दर्शन से शुद्ध हैं वे भय, आशा, स्नेह अथवा लोभ से (18 दोष युक्त) कुदेव, कुशास्त्र और कुगुरुओं को प्रणाम और विनय नहीं करते। श्लोक 4 आप्त-आगम-गुरुओं की श्रद्धा का निर्देश करता है और श्लोक 30 कुदेव कुशास्त्र-कुगुरुओं की श्रद्धा-विनय का निषेध करता है। यहाँ देव-कुदेव का वर्गीकरण राग-द्वेष आदि 18 दोषों के आधार पर किया है, न कि सम्यक्त्व या मिथ्यात्व के आधार पर। स्पष्ट है कि सम्यक्त्वधारी रागी-द्वेषी देवपर्याय का देव पूज्य नहीं है। मोक्ष की प्राप्ति हेतु इनकी पूजा नहीं होती। अतः भय, आशा आदि की चर्चा की है। असंयमी अपूज्य हैं, यह कथन भी प्रथमदृष्ट्या उक्त तथ्य की पुष्टि करता है।

स्वामी समन्तभद्र ने वैय्यावृत्य नामक शिक्षाव्रत के वर्णन में जिनेन्द्रपूजन को समाहित करते हुए 'देवाधिदेव' शब्द से अरहंत भगवान् को सम्बोधित किया है। यहाँ देवाधिदेव शब्द आप्त का ही विशेषण है जिसका अर्थ है कि अरहंत भगवान् देवों के स्वामी इन्द्रादिक द्वारा पूज्य हैं। समग्र दृष्टि से जो अठारह दोष रहित आप्त है वह देव देवाधिदेव, परमदेव आदिनामों से पूज्य है। इन शब्दों से यह ध्वनित नहीं होता, कि देव और देवाधिदेव पृथक-पृथक सत्ताएँ हैं। ये आप्त के ही पर्यायवाची शब्द हैं।

भरत चक्रवर्ती के सोलह स्वप्नों में सातवाँ स्वप्न था- आनंद करते भूत! इसका फलितार्थ है- व्यंतर देवों की पूजा होना। व्यंतर देवों की पूजा के समर्थक महानुभाव तर्क देते हैं। कि ये देव शासनरक्षक देव हैं, अतः ये भी पूज्य हैं। उनका मानना है, कि ये देवालय के द्वारपाल नहीं किन्तु जिनेन्द्र देव के सम्पूर्ण शासन के अधिकृत रक्षक देव हैं, जो मंत्री व सेनापति की भूमिका का निर्वाह करते हैं। यदि यह कथन सत्य होता, तो जैन-संस्कृति और जैन-समाज का विद्वेषियों द्वारा जो विनाश हुआ, विघ्न-उपद्रव हुए, वे कभी नहीं होते। यहाँ तक कि जिनेश्वरी दीक्षा के कवच में जो अशोभनीय कृत्य हुए या हो रहे हैं वे कभी नहीं होते। मंदिरों का विनाश होकर मस्जिदें नहीं बनतीं। तीर्थों का विनाश और अपहरण नहीं होता। साधु भगवंत कोल्हू में नहीं पेले जाते। निश्चित ही यह तब होता है जब उनका कोई रक्षक नहीं होता या रक्षक बलहीन होता है। इसका निर्णय गम्भीरता से करना आवश्यक है। यह भी निर्णय करना है कि ये

रक्षकदेव क्या अपनी रक्षा भी कर सके हैं। यदि नहीं तो उनके नाम के निरर्थक गीत क्यों गाये जा रहे हैं? विचारणीय है।

शासन देवता रक्षक हैं या नहीं इसका उत्तर मेरे जैसा सामान्य बुद्धि का अल्पज्ञ व्यक्ति नहीं दे सकता! विशिष्ट विद्वानों की शरण लेना ही इष्ट है। 'महाजनों येन गतः स पन्था।'

आदरणीय श्री जगन्मोहनलाल जी शास्त्री, कटनी अपनी निष्पक्षता, सहिष्णुता और विद्वत्ता के लिए प्रसिद्ध थे। 'जैनसन्देश' दिनांक 5.4.1990 के पृष्ठ 4-5 में उनका आलेख 'ये जिनशासन देव हैं या मिथ्याशासन देव' प्रकाशित हुआ था, जो पठनीय है। आलेख का प्रसंग था सम्मेलनशिखर जी का नवनिर्मित 'समवशरण मंदिर'। इस मंदिर के बाहर-भीतर, ऊपर-नीचे सैकड़ों सरागी देवी-देवताओं का साम्राज्य है। भगवान् एक फुट के तो सरागी देवता चार-चार फुट के। पंडित जी ने वीतरागी जैन मंदिर में देवी-देवताओं की स्थापन के विरुद्ध तर्क देते हुए लिखा कि "किसी कृष्ण मंदिर में राम की मूर्ति नहीं है, पर यहाँ वीतराग के मंदिर में सरागी देवों की मूर्तियाँ सैकड़ों स्थापित हैं। उनका औचित्य कैसे स्वीकार किया जा सकता है?" ये मूर्तियाँ समवशरण जैसी भक्ति की मुद्रा में नहीं हैं। परन्तु ये देवी-देवता अपनी-अपनी मुद्रा में पूरे मंदिर में छाये हैं, अतः इनका औचित्य नहीं है। पण्डित जी आगे लिखते हैं कि "धर्म के स्थान पर अधर्म के बैठ जाने से धर्म का स्थान छिन जाता है, अतः उचित नहीं है। वीतराग के मंदिरों को वीतराग का ही मंदिर रहने दिया जाता और उन सरागी देवताओं का स्थान सरागियों के ही मन्दिर में, तो वीतरागियों को धोखा न होता। वीतराग मंदिर में सरागी मूर्ति रखकर उन्हें वीतरागमंदिर कहना धोखा है।" आदि।

पण्डित जी आगे लिखते हैं कि "इन सरागी देवी-देवताओं की उपासना कोई-कोई दिगम्बर जैन पण्डित भी करते हैं। पंडित बुद्धजीवी हैं उनमें तर्क-वितर्क-कुतर्क करने की क्षमता है। 'वे कहते हैं कि राजा के साथ राजा के सेवक भी आते हैं, उनका भी आदर करना होता है।' उनका यह तर्क धोखा है, कुतर्क है। राजा तो रागी-द्वेषी होता है, भय से राजकर्मचारी को सम्मान रुपया-पैसा भेंट दी जाती है। इसी प्रकार क्या तीर्थंकर प्रभु राजा की तरह पूजा प्रतिष्ठा के लोभी हैं?

यह प्रश्न है।”

दूसरा तर्क यह है कि ये जिन शासन के रक्षक हैं। किन-किन धर्मात्माओं ने इनकी पूजा-आराधना की और किन-किन की सहायता, सेवा-रक्षा इन देवी-देवताओं ने की, इसका एक भी उदाहरण जैन पुराणों में नहीं है। सती सीता--- समंतभद्र आदि सब जीव परम सम्यक् दृष्टि थे। उन्होंने जिनेन्द्र की आराधना-स्मरण किया, तब देवता सेवा को आये। --- जिनेन्द्र की आराधना पर ये स्वयं आये हैं, तो आयेंगे। फिर इनकी आराधना का उपदेश क्यों?

वर्तमान के पंचकल्याण-महोत्सवों की विद्रूपता दर्शाते हुए पण्डित जी ने लिखा है कि मूल पंचकल्याणक को सौधर्मेन्द्र की आज्ञा से अन्य देवी-देवताओं ने सम्पन्न किया था। अतः यह पंचकल्याणक उसका रूपक है। अब इसमें सौधर्मेन्द्र से इन छोटे-छोटे देवी-देवताओं की पूजा कराते हैं, यह कहाँ तक उचित है? आज्ञादाता को सेवक/पूजक बना दिया। अतः पंचकल्याण-प्रतिष्ठापाठों में इनकी चर्चा कर इनकी पूजा अर्चा का विधान भी शास्त्रों का विपरीत अर्थ करके मिथ्यात्व का खरा पोषण किया है।

पद्मावती-ज्वालामालिनी देवियों के स्वरूप और उनके पूजा-विधान को दृष्टिगत कर पण्डित जी लिखते हैं कि- “इनकी पूजा आराधना विधि जप मंत्र में गधे के रक्त, कुत्ते के रक्त, काकपत्र, श्मसान-हड्डी, मुर्दे के वस्त्र आदि हिंसक घृणित पदार्थों के उपयोग का विधान है। देखिये ये कैसे जिनशासन देव हैं या जिन शासनदेव कह कर आपको मिथ्यात्व की ओर ढकेला जा रहा है।” ‘लघु विद्यानुवाद ग्रंथ’ किस आधार पर बनाया गया? उसकी क्या प्रमाणिकता है? आगे पण्डित जी लिखते हैं-

“फिर जिनबातों का संबंध जिनागम से विरुद्ध वीतरागीजिन के सिवाय रागी-द्वेषी कुदेवों की आराधना है और आराधना हिंसक द्रव्यों से है, तो वह जिनागम कैसे हो सकता है?”

निष्कर्ष-“वीतरागी के सिवाय अन्य देव (पूर्व वर्णित पद्मावती, भैरव, यक्ष, क्षेत्रपाल आदि-आदि) पूज्य नहीं और अहिंसामूलक क्रियाओं के सिवाय हिंसा पूर्ण क्रियाएँ जिनागम मान्य नहीं। इस तरह शासन-देवों के नाम से कुदेवपूजा कभी ग्राह्य नहीं हैं।”

तीर्थकरप्रकृति के उदय के निमित्त से तीर्थकर भगवतों की दिव्यध्वनि समवशरण सभा में खिरती है समवशरण सभा की रचना सौधर्मेन्द्र की आज्ञा से कुवेर द्वारा देव-देवियों की सहायता से की जाती है। समवशरण में सामान्यभूमि से गंधकुटी तक इकतीस अधिकार होते हैं। व्यवस्थानुसार छठवें अधिकार के चार तोरण द्वारों की रक्षा ज्योतिषीदेव करते हैं। तेरहवें अधिकार के दूसरे कोट की रक्षा यक्षदेव करते हैं। सोलहवें अधिकार की तीसरी वेदी की रक्षा यक्षदेव करते हैं, इक्कीसवें अधिकार की चौथी वेदी की रक्षा भवनवासीदेव करते हैं और चौबीसवें अधिकार के चतुर्थ कोट की रक्षा कल्पवासी देव करते हैं। अट्ठाईसवें अधिकार की पीठ पर चारों दिशाओं में चार यक्षेन्द्र सिर पर धर्मचक्र रखे रहते हैं। अभव्य जनों के मनोरंजन हेतु नाटयशालाएँ होती हैं। सातवें अधिकार की ३२ रंग-भूमियों में ३२ भवनवासी कन्याएँ नृत्य करती हैं, पंद्रहवें अधिकार की सोलह नाट्य शालाओं में आदि की आठ में भवनवासी और आगे की आठ में कल्पवासी देवकन्याएँ नृत्य करती हैं। बीसवें अधिकार की सोलह नाटयशालाओं में ज्योतिषीदेवकन्याएँ नृत्य करती हैं। समवशरण के बारह कोठे होते हैं पहले में गणधर मुनि आदि, दूसरे में कल्पवासी देवियाँ, तीसरे में आर्यिका एवं श्राविकाएँ, चौथे से छठे में क्रमशः ज्योतिषी, व्यंतर एवं भवनवासीदेवियाँ, सातवें से दश तक क्रमशः भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी और कल्पवासीदेव, ग्यारहवें में मनुष्य एवं बारहवें में समस्त तीर्थच जीव बैठ कर प्रतिदिन तीन बार ६-६ घड़ी दिव्यध्वनि सुनते हैं। जैसे ही तीर्थकर भगवान् योगनिरोध करते हैं, समवशरण सभा बिखर जाती है। सभी यक्ष, यक्षी, देव-देवियाँ, इन्द्र-इन्द्राणियाँ, मनुष्य आदि अपने-अपने स्थान पर पहुँचकर अपना सहजनित्य कर्म करने लगते हैं। इस दृष्टि से, कथित शासन-रक्षक-देव को अपने भवनों में पहुँचकर अपनी आयु के अनुसार पर्याय में रहकर अन्य पर्यायों को धारण करते हैं। पर्यायगत कर्तव्य उसी पर्याय में समाप्त हो जाता है। वे अमर नहीं होते अतः उनका कर्तव्य भी अमर नहीं रहता। सभी संसारी जीव अपनी आयु से बंधे हैं। उनकी पूजा क्यों?

आचार्यकल्प पं० टोडरमल जी ने सम्यग्ज्ञान चन्द्रिका, त्रिलोकसार आदि ग्रंथों की ढूँढारी भाषा में टीका लिखी। उच्च नैतिकता, प्रमाणिकता एवं आगम निष्ठा के प्रकाश

में जो जैसा कथन किया था उसकी टीका निष्पृहभाव से मूल के अनुरूप की। अपनी ओर से अन्यथा नहीं लिखा। त्रिलोकसार गाथा ९८८ की टीका भी गाथानुरूप की। जिसमें जिनप्रतिमा के पार्श्व में श्री देवी और सरस्वती देवी का और सवह्नि यक्ष तथा सनत्कुमार यक्ष का वर्णन है। श्री टोडरमल जी ने इसमें कोई छेड़छाड़ नहीं की किन्तु अपने ग्रंथ मोक्षमार्गप्रकाशक के छठें अध्याय में कुदेवप्रकरण में व्यंतर, ज्योतिषी, क्षेत्रपाल, दहाड़ी, पद्यावती आदि देवी, यक्ष-यक्षणी आदि की पूजा का सतर्क निषेध किया है और उन्हें कुदेवों की श्रेणी में माना है। इनकी पूजा से मिथ्यात्व भाव की पुष्टि होती है। पण्डित जी ने तर्क किया कि सम्यक्त्वपने से पूज्य मानते हो तो सर्वार्थसिद्धि के देव, लौकान्तिक देवों को क्यों नहीं पूजते। पण्डित जी के हार्द को समझे (पृ. १६८-१७५)।

विद्वान् मनीषी श्री पण्डित सदासुखदास जी कासलीवाल जी ने श्री रत्नकरण्डश्रावकाचार जी की ढूँढारी भाषा में टीका लिखी। आपने श्लोक २३, (पृष्ठ ४३-४८) की टीका में लिखा- जो व्यंतर-क्षेत्रपालादि को अपनी सहायता करने वाला मानते हैं, सो यह मिथ्यात्व के उदय का प्रभाव है। प्रथम तो भवनवासी, व्यंतर और ज्योतिषी इन तीन प्रकार के देवों में मिथ्यादृष्टि ही उत्पन्न

होते हैं। जो जैनी है और अपने को अव्रती जानता है, वह सम्यग्दृष्टि से अपनी बंदना पूजा कैसे करायेंगा? तथा शास्त्रों में ऐसी कोई कथा नहीं है जहाँ धर्मात्मा पुरुष ने देवों की पूजा की हो। बधाई उन महानुभावों को जिन्होंने उक्त दोनों विद्वान् मनीषियों के कथन को यथावत् प्रकाशित किया।

यह उल्लेखनीय है कि उपलक्षण न्याय से सवह्नि यक्ष आदि के समान क्षेत्रपालादि को मानने से इन्द्रादिक की व्यवस्था भंग होती है, अतः यह अनुचित है। वीतरागी परम्परा में अठारह दोष रहित अरहंतदेव ही जिनदेव हैं और पूज्य हैं। पू० आचार्य श्री विद्यासागर जी भी इसकी पुष्टि करते हैं। आचार्य श्री शांतिसागर जी ने भी शासन देवी-देवताओं की उपासना का निषेध किया था।

किसी देवी-देवता को, वर-की इच्छा या बिना इच्छा के, आप्त-जिनदेव मानना या उनकी पूजा-उपासना करना पूर्व जन्म के तीव्र मिथ्यात्व-भाव के संस्कार का द्योतक है। यह जिनधर्म का अवर्णवाद है। सम्यक्त्व हेतु जिनदेव के स्वरूप का सच्चा-पक्का निर्णय करना ही सच्ची दिग्विजय है, बाकी सब इस भव की पराजय है। विज्ञान जन मार्ग दर्शन करें।

1 वृक्ष 100 संतान

रामटेक से छिंदवाड़ा की ओर बिहार करते हुए चले आ रहे थे। धूप होने की वजह से रास्ते में बैठने के भाव हो रहे थे, लेकिन बहुत दूर-दूर तक कोई भी छायादार वृक्ष दिखाई नहीं दे रहा था। कुछ दूर और चलने पर देखा आचार्यश्री जी एक पेड़ के नीचे बैठे थे। हम लोगों को देखकर आचार्य महाराज ने कहा-आओ महाराज बैठ लो, अब थोड़ा और चलना है। हम दोनों महाराज आचार्य महाराज के समीप जाकर बैठ गये। जो साथ में महाराज थे, उन्होंने कहा हम लोग अभी यही चर्चा कर रहे थे कि कितना चलना होगा। आचार्य श्री तो कुछ आहार में लेते भी नहीं और इतना चलते भी हैं, तो आचार्य महाराज हँसकर कहते हैं, “कुछ लेना ना देना मगन रहना।” हम तो तुम जवानों को देखकर चलते रहते हैं, तो हम लोगों ने कहा हम आपको देखकर चलते रहते हैं।

फिर बोले-बहुत देर बाद एक छायादार वृक्ष मिला। अब तो मानना होगा 1 वृक्ष 100 संतान के बराबर होता है। देखो कितने लोग इसकी छाया में बैठकर शांति का अनुभव कर रहे हैं। आज वृक्षों को काटकर नगर बसाये जा रहे हैं। लेकिन प्रकृति के बिना मानव सुरक्षित नहीं रह सकता। मानव को इस ओर भी ध्यान रखना चाहिए।

मोक्षमार्ग की साधना चार प्रत्ययों में पूर्ण होती है, अज्ञाननिवृत्ति, हान (विषय त्याग) उपादान (व्रत ग्रहण) एवं उपेक्षा (विकल्पों की शून्यता)।

मुनि श्री कुंथुसागरकृत 'संस्मरण' से साभार

जैनधर्म : विश्व शांति में सहायक

डॉ० निजाम उद्दीन

‘महाभारत’ में वर्णित ‘वन-पर्व’ के यक्ष-प्रश्न-प्रसंग में पूछा गया कि “दिशा कौन सी है?” और इसके उत्तर में कहा गया कि ‘संत ही दिशा हैं’ (सन्तो दिक्)। आज जब हम भगवान् महावीर के जीवन और उपदेशों को देखते हैं तो मालूम होता है कि भारत ही नहीं, वरन् विश्व की सुख-शांति के लिए वे अनुकरणीय हैं। उनकी अहिंसा, अनेकान्त दृष्टि और अपरिग्रह की भावना हमारे लिए आज भी प्रासंगिक हैं। उनका ‘जियो और जीने दो’ का सिद्धान्त किसे उपादेय नहीं लगता? महावीर का लोकधर्म, व्यक्ति-विकास की पूर्ण प्रतिष्ठा हमारे युग के परिवेश में बंधी हुई है। उनकी वाणी की सहज उद्भूति ‘उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्तं सत्’ में द्रव्य की जो परिभाषा अभिव्यंजित है वह वैज्ञानिकों के परीक्षण-अन्वीक्षण द्वारा मान्यता प्राप्त कर चुकी है। भगवान् महावीर ने अपने भेद-विज्ञान के दर्शन में जड़-चेतन की सम्पूर्णता का जो अति सूक्ष्म ज्ञान दिया, आज विज्ञान उसी की ओर अग्रसर है। उनका अनेकान्तवाद का सिद्धांत ‘सर्वधर्मसमभाव’ (अर्थात् द्रव्यों में पाये जाने वाले अनन्त धर्मों के समन्वय) का प्रतीक है और बदलते युग के संदर्भों में उसकी उपादेयता और बढ़ गई है। वर्तमानयुग के परिप्रेक्ष्य में यदि भगवान् महावीर की जीवन-दृष्टि, उनका अहिंसा-दर्शन से, हम अपनी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक समस्याओं का समाधान प्राप्त कर सकते हैं। यह माना कि महावीर के युग और हमारे युग के बीच तीन हजार वर्षों का लम्बा फासला है, परन्तु उनके सिद्धान्त उतने ही अधिक निकट हैं, उतने ही अधिक उपयोगी हैं जितने तद्युगीन थे अतः महावीर की प्रासंगिकता पर प्रश्न-चिन्ह नहीं लगाया जा सकता और निःसंदेह विश्व-शांति के लिए वह आज भी पथदर्शक हैं।

अहिंसा का दर्शन महावीर के महावीरत्व का उद्घोषक हैं। अहिंसा की भावना का प्रचार-प्रसार महावीर से पूर्व भी तीर्थंकरों और ऋषि-मुनियों ने किया, परन्तु महावीर ने उसमें अधिक व्यापकता भरी। उनका प्राणी-तंत्र का यह दर्शन मनुष्य के साथ असंख्य पशु-पक्षी और कीड़े-मकोड़ों तक फैला हुआ है। उन्होंने कहा ‘मेत्ति

भूएसु कप्पए।’ (उत्तरा० ६/२) अर्थात् सब जीवों के प्रति मैत्री भाव रखना चाहिए। जब मैत्री इतनी व्यापक हो तो शत्रुता कहाँ रहेगी, किसके साथ वैर होगा? हम देखते हैं कि एक देश से दूसरे देश में मैत्री-सम्बन्ध रखने के लिए, मैत्री बढ़ाने के लिए राजदूत को भेजा जाता है, दूतावास-स्तर पर सम्बंध गाढ़े व गहरे बनाये जाते हैं, जब कभी परस्पर किसी बात पर मतभेद होता है। तो ये देश इसी दूतावास-स्तर पर वार्ता द्वारा उसे दूर कर लेते हैं। भारत के अपने पड़ोसी देशों के साथ जब कभी कोई मत-भेद होता है तो उसे मैत्री भाव से मैत्रीपूर्ण वातावरण में दूर कर लिया जाता है। यदि इसी प्रकार की मैत्री को बनाये रखा जाये, एक सम्मानजन्य और समताजन्य वातावरण हमेशा कायम रखें तो कोई बात नहीं कि संसार के सभी देशों में शांतिपूर्ण सम्बंधों का विकास हो, उन्हें मजबूती मिले। आचार्य उमास्वामी ने ‘तत्त्वार्थसूत्र’ (५/२१) में कहा है- ‘परस्परोपग्रहोजीवानाम्’ अर्थात् जीवों का परस्पर उपकार। जैनदर्शन का यह सूत्र सकल संसार को शांति एवं सह-अस्तित्व की प्रेरणा देता है। मैत्री, उपकार या सह-अस्तित्व के आदर्श खोखले या अव्यावहारिक नहीं हैं, इनकी व्यवहारिकता असंदिग्ध है। राजनीतिक स्तर पर राष्ट्रसंघ की स्थापना (१९४५) का प्रमुख उद्देश्य यही था। पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने वाण्डुंग-सम्मेलन (१९५४) में सह अस्तित्व (Co-existence) की बात कहकर जो पंचशील के सिद्धान्त स्थापित किये थे उनके पीछे क्या जैनधर्म की अहिंसा, मैत्री या ‘परस्परोपग्रहोजीवानाम्’ का आदर्श काम नहीं कर रहा था? गुट-निरपेक्ष राष्ट्रों के कर्णधारों-पं० जवाहरलाल नेहरू, मिस्त्र के राष्ट्रपति कर्नल नासिर, यूगोसलावाकिया के राष्ट्रपति मार्शल टीटो ने मैत्री और सह-अस्तित्व को बढ़ावा देने के लिए इस गुट को स्थापित किया था। और हम देखते हैं कि भारत की यह गुट-निरपेक्ष नीति बहुत सफल है- इसका आधार समानता के स्तर पर मैत्रीभाव हैं।

जैनधर्म में हिंसा चार प्रकार की मानी जाती है-
(१) स्वभाव हिंसा-जो क्रोधादि कषायों से उत्पन्न होती

है। (२) स्वद्रव्य हिंसा-अंग को, शरीर को कष्ट देना, आत्मघात करना। (३) परभाव हिंसा-कुवचन बोलकर, दूसरों के अन्तरंग को पीड़ा पहुँचाना। (४) परद्रव्य हिंसा-दूसरे का आघात पहुँचाना, प्राणों का हनन करना। हिंसा के इन सभी प्रकारों-रूपों का विनाश जैनधर्म का प्रमुख लक्ष्य है। भारत यों भी अहिंसा में विश्वास करता रहा है, परन्तु जैनधर्म में प्रतिपादित अहिंसा अधिक व्यापक है, बहुआयामी है। यहाँ वचनों से भी यदि किसी के हृदय को ठेस पहुँचती है तो उसी का निषेध है, किसी की भावना को धक्का लगता है तो वह हिंसा भी त्याज्य है। ऐसी व्यापक अहिंसा को आचरण के सांचे में ढाला जाये तो मनुष्य के व्यक्तित्व को दूसरा रूप क्यों न प्राप्त होगा। संसार का यह विषमताजन्य वातावरण क्यों न समतामय बनेगा, क्यों न यहाँ एकता की भावना पारवान चढ़ेगी। देखने में आता है कि सशस्त्रीकरण की होड़ लगी है, प्रत्येक देश सैनिक शक्ति जुटाने में लगा है, करोड़ों रु० गोलाबारूद, घातक अस्त्र, अणुबम आदि बनाने में पानी की तरह बहाया जा रहा है। यदि सब देश ठण्डे मन से जैनधर्म की अहिंसा पर विचार करें और उसे अपने जीवन में ढालें, उस पर अमल करें तो विश्व में अशांति के और शीत युद्ध के बादल शीघ्र छट सकते हैं।

हम कहते हैं कि प्रदूषण पर्यावरण में है, कभी जल पर्यावरण की बात कही जाती है, कभी वायु के प्रदूषण की चर्चा की जाती है, यह सब तो है ही और इसका जिम्मेदार भी मनुष्य है, उसकी स्वार्थबद्ध दृष्टि है। बागों, उपवनों, वनों का कटाव कितना घातक सिद्ध हुआ है यह किसी से छिपा नहीं, तभी मनुष्य को कुछ होश आया और उसने वृक्षारोपण या वन-महोत्सव का कार्य शुरू किया। परन्तु इससे कहीं घातक है विचारों का प्रदूषण। विचारों में प्रदूषण के कारण हम दूसरों की निन्दा करते हैं, उनकी अवमानना करते हैं। यदि जैनधर्म के अनेकान्तवाद पर दृष्टि डाली जाये तो यहाँ सभी प्रकार का विचार-वैभिन्य समाप्त हो जाता है। यह एक अनाग्रही दृष्टिकोण है। इसमें दुराग्रह या हठधर्मी के लिये कोई स्थान नहीं। जहाँ दुराग्रह होगा वहीं संघर्ष और द्वन्द्व का घोर-गर्जन सुनाई पड़ेगा। जब भी कोई विकट समस्या उत्पन्न होती है तो उसकी प्रमुख कारण हठधर्मी और

दुराग्रह होता है। इस्त्राइल, वियतनाम आदि की समस्याएँ इसका उदाहरण मानी जा सकती हैं। महावीर ने दुराग्रहों को समाप्त करने के लिये एक उदार दृष्टिकोण दिया- 'अनेकान्तवाद'। इस दृष्टि से वैचारिक सहिष्णुता का उदय होता है, किसी प्रकार का विचारद्वन्द्व नहीं रहता क्योंकि यह अनेक मतों-धर्मों को सामने रखता है, किसी एक के प्रति आग्रही नहीं होता। यदि इस वैचारिक सहिष्णुता के आलोक में प्रवेश करें तो सभी प्रकार का तिमिर दूर हो सकता है, संसार को शांति का आलोक मिल सकता है।

भय का वातावरण दूर करने के लिये जैनधर्म की, भगवान् महावीर की शरण में आना पड़ता है। महावीर तो निर्भय होकर वनों, पर्वतों, उपत्यकाओं में घूमते फिरे। हिंस्र पशुओं, बटमारों से भी उन्होंने मैत्री की, अहिंसापूर्ण व्यवहार किया, वह किसी से भी नहीं डरते थे। आज हम घर के बाहर ही नहीं, घर में भी डरते हैं, स्त्रियों का इधर-उधर आना-जाना खतरे से खाली नहीं। सारा समाज हिंसा के अभिशाप में जकड़ा है, चारों ओर अशांति है, लूटमार है, बलात्कार और व्यभिचार है। इसके पीछे कारण है अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य और अस्तेय का अभाव। स्मगलिंग का सामन धड़ाधड इधर-उधर पहुँचता है, दिन दाहड़े घरों को लूटा जाता है, हत्याएँ भी धन लूटने के लिये की जाती हैं। धन लिप्सा न जाने कैसे-कैसे अपराध कराती है? यदि जैनधर्म के उक्त महान् व्रतों को जीवन में उतारें, तो संसार का आर्थिक संघर्ष नष्ट हो सकता है, वस्तुओं के मूल्य भी निश्चित रूप में घट सकते हैं। अपरिग्रह में धन बटोरने या धन-संग्रह करने के लिये लूट-खसोट नहीं की जाती। यहाँ दूसरों को निर्धन बनाकर, उनके अभाव की उपेक्षा करके हम वैभवपूर्ण जीवन बिताते हैं, फिर शांति कैसे हो? समाज में, विश्व में शांति स्थापित करने के लिये अपरिग्रहवाद के राजमार्ग पर चलना होगा और परिग्रह की अंधकारपूर्ण, भ्रमित करने वाली, अशांति की ओर ले जाने वाली संकीर्ण पगडंडियों को छोड़ना होगा। जैनधर्म के सिद्धांत निश्चित रूप से संसार में शांति स्थापित करने में कारगर साबित होंगे, जरूरत केवल उन्हें पढ़ने या देखने की नहीं, जीवन में, व्यवहार में उतारने की है।

'आचार्य श्री धर्मसागर अभिनन्दनग्रन्थ'
से साभार

केवल शान-शौकत से नहीं बनता अच्छा व्यक्तित्व

डॉ. एस. बी. सिंह

टीवी-फिल्मों से घिरा बचपन, भागदौड़ में लिप्त अभिभावक, आखिर इनके बीच एक बच्चे का सकारात्मक विकास कैसे हो?

लेखक वरिष्ठ मनोवैज्ञानिक हैं और मनोविज्ञान व व्यवहारशास्त्र के विशेषज्ञ हैं।

समाज में जो कुछ भी घटता है, चाहे वह अपराध हो या कुछ और उसका सीधा असर बच्चे के मस्तिष्क समेत उसकी सोच पर पड़ता है। यही वजह है कि सामाजिक घटनाओं से जुड़ी मनोवैज्ञानिक विकृतियाँ अब स्कूली बच्चों को भी निगलने लगी हैं। यौन शोषण एवं यौन अपराध अपनी सीमाएँ लाँघ रहे हैं, तो संवेदनहीन नई पीढ़ी से तंग आकर वृद्धाश्रम की शरण लेनेवाले माँ बाप की संख्या भी बढ़ रही है। इसे देख स्वाभाविक प्रश्न उठता है कि नई पीढ़ी की इस वर्तमान स्थिति और भविष्य के लिए कौन उत्तरदायी है?

मनोविज्ञानी मानते आए हैं कि यदि बच्चे का विकास समुचित ढंग से नहीं हुआ या उसके सामान्य विकास में अवरोध उत्पन्न हुए तो उसका व्यक्तित्व नकारात्मक ढंग से प्रभावित होता है। माँ-बाप के बीच झगड़े, तलाक, अलगाव आदि का प्रभाव बच्चे के कोमल मन पर पड़ता है और वह असुरक्षा की भावना, आत्मविश्वास की कमी, हीनता एवं अस्थिरता का शिकार हो जाता है। हाल ही में हुए कई मनोवैज्ञानिक अध्ययनों से यह पता चला है कि यदि माँ-बच्चे का संबंध सुरक्षात्मक और प्रेमपूर्ण है तो बच्चे के व्यक्तित्व में सकारात्मक गुणों का विकास होता है। ऐसा न होने पर वह किशोरावस्था या युवावस्था में क्रोध, आक्रामकता एवं अपरिपक्वता से ग्रसित हो जाता है। एक अन्य मनोवैज्ञानिक विचारधारा के अनुसार मनुष्य का सारा व्यवहार अर्जित है। परिवार के पालन-पोषण का तरीका और घर का वातावरण बच्चे के व्यक्तित्व एवं व्यवहार का कारण बनता है।

आज समाज का एक वर्ग आर्थिक समस्याओं से जूझ रहा है। उसे दो वक्त की रोटी जुटाने के लाले पड़े हैं। ऐसे में उसे बच्चे के भविष्य से कोई सरोकार ही नहीं रह गया है। उसे कुछ सोचने की फुर्सत ही नहीं है। सिवाय इसके कि घर में चूल्हा जलेगा कि

नहीं। बच्चा क्या कर रहा है, कहाँ जाता है, कैसे रहता है? उसे यह पता करने का समय ही नहीं है। इतने अभावों और उपेक्षा में पला-बढ़ा बच्चा बड़े होने पर उच्च वर्ग के लोगों के लिए आक्रामक हो सकता है। समाज और मान्यताओं के प्रति बगावत कर सकता है। उनको लूट मारकर अपना वर्चस्व स्थापित करना चाहता है। इससे उसको सुकून और शांति मिलती है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से ऐसे बच्चों के अवचेतन मन में शक्ति-प्रदर्शन एवं प्रभुत्व स्थापित करने की इच्छा होती है। यह तब है जब सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक कारणों से समाज में अमीरी-गरीबी की खाई बढ़ती जा रही है।

दूसरी ओर हैं आज के व्यस्त आधुनिक माँ-बाप, जो भौतिकता में इतने लिप्त हैं कि उनको पैसा कमाने की सनक चैन से रहने ही नहीं देती, नतीजतन बच्चों को माँ-बाप का सान्निध्य नसीब नहीं हो रहा है। ऐसे माँ-बाप भूल जाते हैं कि सान्निध्य एवं साहचर्य से ही प्रेम की उत्पत्ति होती है। बच्चों को सुबह-सुबह सोते से उठाकर, मुँह धुलाकर, खाना टुंसाकर बोरे की तरह बस में डाल दिया जाता है। विद्यालय से आते ही फिर खिला-पिलाकर सुला दिया जाता है, क्योंकि शाम को ट्यूशन पर जाना है। पुनः आना, खाना, पीना और सो जाना। जहाँ माँ-बाप दोनों नौकरी में हैं वहाँ बच्चों का पालन-पोषण नौकरों द्वारा होता है या बहुत यांत्रिक ढंग से। यह विचारणीय है कि ऐसे वातावरण में यदि बच्चा पलेगा-बढ़ेगा तो बिलकुल रोबोट हो जाएगा। इसमें यदि चाबी गड़बड़ लग गई तो वह या तो विध्वंसक हो जाएगा या फिर चलेगा ही नहीं।

सीखने का एक और सिद्धांत है जिसे हम आदर्श का अनुकरण कहते हैं। इसके मुताबिक बच्चे के सामने जो आदर्श होते हैं वह उन्हीं का अनुकरण करके सीखता है। आज के दौर में जो जितना भ्रष्ट वह उतना ही

महान, जिसकी जितनी संपत्ति वह उतना ही सफल, जिसका जितना बाहुबल वह उतना ही बलवान। इन आदर्शों की पूर्ति के लिए युवा पीढ़ी कुछ भी करने के लिए तैयार है। एक और भी मनोवैज्ञानिक तथ्य है जिसे हम वीपेन इफेक्ट कहते हैं। हथियारों के बीच पलने वाले बच्चे का व्यक्तित्व विध्वंसकारी होता है। उसे कभी-कभी विध्वंस और मारकाट में अत्यधिक आनंद आता है।

देखनेवाली बात है कि भारतीय जीवनशैली पर पाश्चात्य जीवनशैली हावी होती जा रही है। भारतीय आदर्श और मूल्य मरते जा रहे हैं। दूरसंचार और सूचना प्रौद्योगिकी हमारे जीवन पर पूरी तरह हावी हो चुके हैं। दूरदर्शन, कम्प्यूटर, मोबाइल ने लोगों को समाज से अलग-थलग कर दिया है। टीवी पर क्राइम के ही सीरियल दिखाए जाते हैं। कम्प्यूटर पर तो ना जाने क्या-क्या उपलब्ध है। कभी गौर कीजिए कि बच्चे कितने चाव से उन्हें देखते हैं और उनमें दिखाए पात्रों से पूर्ण रूप से सहमति जताते हैं। यही नहीं वे उसे अपनी वास्तविक जिंदगी में उतारने के लिए भी उतावले रहते हैं। बहादुर बनने और आधिपत्य स्थापित करने की प्रवृत्ति उनके व्यक्तित्व का एक भाग बन जाती है।

इसके अतिरिक्त सुंदर बनने की ख्वाहिश और जवां दिखने की हसरत भी हृद से ज्यादा बढ़ती जा रही है और उसके लिए भी युवा पीढ़ी क्या-क्या नहीं कर रही है। प्रतियोगिता, आगे निकलने की चाहत, रातों रात अमीर बन जाने की तमन्ना। ऐसे में कैसे होगा स्वस्थ व्यक्तित्व का विकास? इसके निराकरण का कोई सरल रास्ता नहीं है। बस एक ही बात समझ में आती है कि बहुत सारी अवांछनीय आदतों तथा कुंठित एवं अपरिपक्व व्यक्तित्व का विकास नासमझी और अनजाने में ही हो रहा है। जो कुछ हो रहा है उसका परिणाम क्या होगा? जिसे माँ-बाप अपनी सामाजिक श्रेष्ठता और आन-बान-शान का प्रतीक समझते हैं वह उनके बच्चे में किस तरह का व्यक्ति विकसित करेगा। यह वे नहीं जानते या नहीं समझते। यदि हम मीडिया के उपयोग से माँ-बाप को इसके परिणामों का भी प्रशिक्षण दे सकें तो पूरा विश्वास है कि कोई भी माँ-बाप जानबूझकर ऐसा नहीं करेंगे। इसके बाद ही वर्तमान स्थिति में परिवर्तन संभव है।

'दैनिक भास्कर', भोपाल
4 जनवरी 2008 से साभार

प्रथम-दर्शन

तब उन्हें पहली बार देखा था। छोटे से कमरे में वे बैठे थे। इतना बड़ा व्यक्तित्व इतने छोटे स्थान में समा गया, इस बात ने मुझे चकित ही किया। उनके ठीक पीछे खुली हुई एक बड़ी खिड़की और उससे झाँकता आकाश उस दिन पहली बार बहुत अच्छा लगा। खिड़की से आती रोशनी और उनकी निरावरित देह से निरन्तर झरती प्रभा ने अनायास एक ऐसा आभा-मण्डल वहाँ बना दिया था जो उनके मुख पर बिखरी मुस्कान की तरह सहज प्रभावक था।

क्षण भर के लिए मैं उस वीतराग देह के आकर्षण में खो गया और बाहर ही ठिठका रह गया। थोड़ी देर बाद लगा कि भीतर जाना चाहिए। देखना तो भीतर से ही संभव है। बाहर से पूरा देखना नहीं हो पाता, पर भीतर पहुँचना आसान नहीं था। दरवाजे पर भीड़ बहुत थी और मैं अभी भीड़ से घिरा था। यह सोचकर कि कभी संभव हुआ तो एकाकी होकर आऊँगा, मैं वापिस लौट आया। कह तो यही रहा हूँ कि उस दिन वापिस लौट आया, लेकिन आज तक लौट नहीं पाया। अब तो यही चाहता हूँ कि जीवन भर उन श्री-चरणों में बना रहूँ, वहाँ से कभी अलग न होऊँ। मुझे पहली बार उनके दर्शन करके वीतरागता के जीवन्त-सौंदर्य का अहसास हुआ। फिर तो मंदिर में विराजे श्री भगवान् भी जीवित लगने लगे। यही मेरे प्रथम दर्शन की उपलब्धि है।

(कुण्डलपुर 1976)

मुनि श्री क्षमासागरकृत 'आत्मान्वेषी' से साभार

माता बहिन सुता पहचानो

डॉ० ज्योति जैन (खतौली)

सुबह होते ही अखवार की सुर्खियाँ पढ़कर लगता है कि क्या हो गया है हमारे पारिवारिक, सामाजिक मूल्यों को? मानवीय संबंधों को जोड़ने वाले, परिवार को सूत्र में बाँधने वाले सभी रिश्ते तार-तार हो टूटकर अपनी मर्यादायें खोते जा रहे हैं। सुर्खियाँ भी अखवारों की ऐसी कि लगता है कि हम किस संवेदनहीन समाज की ओर बढ़ रहे हैं। मनुष्य का इससे बड़ा पतन क्या होगा, जब हम पढ़ते हैं कि 'बाप ने किया बेटी को गर्भवती', एक महिला के साथ हुआ सामूहिक बलात्कार, 'कलयुगी भाई ने किया बलात्कार', 'दो वर्ष की मासूम हुई हैवानियत की शिकार' आदि न जाने कितनी घटनाएँ रोज पढ़ने-सुनने को मिलती है। आज पुरुष की हवस का शिकार बनने के लिए बालिग होना जरूरी नहीं रहा गया है। उसका स्त्री रूप होना ही पर्याप्त है। नारी के यौन उत्पीड़न का इतिहास मानव जीवन के इतिहास की तरह ही पुराना है पर आज जिस तरह से रिश्तों की मर्यादाएँ टूट रही हैं, और संयमहीनता सामने आ रही है वह हमारी शून्य होती संवेदनाओं को दर्शा रही है।

यह भी सच है कि मनुष्य काम-भोग का दास बना हुआ है। काम का आकर्षण उसके जीवन को भोगमय बना रहा है। यह भी सच है कि काम वासनाओं से कभी तृप्ति नहीं मिलती और मनुष्य ही संसार का ऐसा प्राणी है जिसके काम सेवन का कोई समय निश्चित नहीं है। समस्त प्रकार की वासनाओं में कामवासना तीव्रतम है। अन्य इन्द्रियों का दमन करना तो सरल है, किंतु कामेन्द्रिय को वश में करना कठिन है। काम और भोग भटकाने वाले तत्त्व हैं।

इन्द्रियसंयम के कामावासना को जीता जा सकता है। इन्द्रिय संयम ही ब्रह्मचर्य है। आचार्यों धर्म गुरुओं ने कामवासनाओं को जीतने के लिए ब्रह्मचर्य का उपदेश दिया है। 'ब्रह्मणि आत्मनि चरणं ब्रह्मचर्यम्' स्वयं की आत्मा में रमण करना ब्रह्मचर्य है। जैन परम्परा में इसे सबसे बड़ा व्रत कहा गया है। दस धर्मों में इसे सबसे बड़ा धर्म कहा गया है। जिस तरह रोग से मुक्त होने के लिए औषधि का सेवन करना आवश्यक है, उसी तरह भवरूपी रोग से मुक्त होने के लिए ब्रह्मचर्य की

परम आवश्यकता है।

आज हम पाँचों इन्द्रियों और मन के विषयों के दास होते जा रहे हैं, यही कारण है वाणी और काय की अपेक्षा मन से अधिक पाप करते हैं। वस्तुतः देखा जाए, तो शारीरिक व्यभिचार न भी करें, तो भी मन कहाँ-कहाँ भकटता, किस-किस से संबंध नहीं बनाता?

एक स्वस्थ मानसिकता बनाते हुए अपने भावों व परिणामों में निर्मलता, पवित्रता रखते हुए इन्द्रियसंयम अपनाना ब्रह्मचर्य है। मन में विकार आए तो विचारों में विकृति आती ही है। और फिर सही गलत का विवेक भी नहीं रह पाता अतः अच्छे दोस्तों और अच्छी संगति में रहें सदैव स्वस्थ भावना रखें, भक्ति, पूजा-पाठ स्वाध्याय, योग, ध्यान, प्राणायाम आदि से भी भावों में निर्मलता आती है और विषयों में आसिक्त कम होती है। अतः इनका पालन करें।

शीलव्रत स्त्री पुरुष का शृंगार है। शील का सदैव पालन करना चाहिए। शील के अठारहहजार भेद बताए गए हैं। और शील की नौ बाड़ों के द्वारा रक्षा करने के सूत्र भी बताए गए हैं। जो इनका पालन करता है, वही ब्रह्मचर्य का पालन करता है। आचार्यों ने गृहस्थों को 'स्वदार संतोष व्रत' का पालन करने को प्रेरित किया है। अपनी स्त्री से संतोष रखना और अन्य को माँ बहन-बेटी के समान समझना स्वदार व्रत (ब्रह्मचर्याणुव्रत) है। हमारी संस्कृति में संयम को ही जीवन कहा गया है। 'संयमः खलु जीवनम्'

हमारे ग्रंथों में सैकड़ों कथानक हैं, जो हमें बताते हैं, कि किस तरह ब्रह्मचर्य धर्म का पालन कर लोगों ने अपने कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया। ब्राह्मी-सुंदरी ने ब्रह्मचर्यव्रत धारण किया और आज भी प्रेरणा दे रही हैं कि किस तरह नारियाँ यह व्रत धारण कर आत्म कल्याण की ओर बढ़ सकती हैं। महासती सीता ने अग्नि परीक्षा देकर अपने शील धर्म को दिखाया। सेठ सुदर्शन ने स्वदार-संतोषव्रत का पालन किया तो शूली सिंहासन बन गई। विजय सेठ, विजया सेठानी, जिन्होंने अलग-अलग शुक्लपक्ष-कृष्णपक्ष के ब्रह्मचर्यव्रत का पालन किया और जीवन पर्यंत उसका निर्वाह किया। देशभूषण,

कुलभूषण, राजकुमार की दृष्टि जब आरती उतारती हुई कन्या पर पड़ी और वे उसकी ओर आसक्त हुए, किंतु पता चलने पर कि 'हमारी ही बहिन है', तब उन्होंने प्रायश्चित्त किया और वैराग्य पथ पर चल पड़े। आदि अनेक धार्मिक कथानक आज भी हमारे चिंतन को दिशा दे रहे हैं। वर्तमान में भी अनेक उदाहरण हैं शिवाजी महाराज से जब एक स्त्री ने कहा कि वह उनसे उनके जैसा ही पुत्र चाहती है तब महाराज ने उसके चरण छू कर कहा कि 'आज से मैं ही तुम्हारा पुत्र हूँ, माँ!' महाराज छत्रसाल, स्वामी विवेकानंद, महात्मा गाँधी आदि महापुरुषों के जीवन के भी ऐसे ही अनेक प्रसंग हैं।

यह विचारणीय व चिंताजनक स्थिति है। कि आज हम किस दिशा में जा रहे हैं। भोगवादी अप संस्कृति, कुत्सित साहित्य, अश्लील फैशन निरंतर बढ़ती जा रही है। रिश्तों की मर्यादाएँ नष्ट हो रही हैं और व्यक्ति का नैतिक चारित्रिक पतन हो रहा है। गृहमंत्रालय के अपराध का रिकार्ड बताता है कि हर ४७ वें मिनट पर एक महिला के साथ बलात्कार, ४० वें मिनट में अपहरण एवं हर ६वें मिनट में किसी न किसी के साथ छेड़छाड़ होती हैं। ये तो महज दर्ज आँकड़ें हैं न जाने कितने अपराध मिनट दर मिनट होते रहते हैं।

हमारे समाजिक, पारिवारिक मूल्यों और मर्यादाओं को चोट पहुँचाने में दृश्य-श्रव्य मीडिया व टी.वी. चैनलों, समाचार पत्रों-पत्रिकाओं ने जो भूमिका निभाई है, उसमें स्त्री रूप को सैक्सी एवं उपभोग की वस्तु के रूप में प्रस्तुत किया है। हमारे परंपरागत एवं संस्कारित परिवार जिन दृश्यों की कल्पना भी नहीं कर सकते हैं अब वह हमारे ही घरों में ड्राइंग रूम के टी.वी. में सुबह से लेकर देर रात तक दिखाए जा रहे हैं। दिन में न जाने कितनी बार तीन पीढ़ी दादा-दादी, बहू-बेटे, पोता-पोती इन दृश्यों को देखते होंगे। समाचार पत्र पत्रिकाओं

में रंगीन सैक्सी फोटो अपने ही अंदाज में छप रहे हैं। गानों में सीधे-सीधे द्विअर्थी अश्लील शब्दों की भरमार बढ़ती जा रही है। अब तो चूमा चाटी के दृश्य व केबिल संस्कृति के चैनलों में ब्लू फिल्मों का दौर भी चल पड़ा है। इन सबने मिलकर हमारी संस्कृति को चोट तो पहुँचाई ही है और हमारे बच्चों को समय से पहले बड़ा बना दिया है। चौंकानेवाले आँकड़े तो यह है कि, किशोर वर्ग किस तरह सैक्स चक्रव्यूह में फँसता जा रहा है। टी.वी. में जनसंख्या नियंत्रण एवं एड्स के विज्ञापनों में जहाँ यौन उन्मुक्तता का प्रदर्शन हो रहा है वहाँ संयमहीनता को भी बढ़ावा मिल रहा है। एक तरफ मीडिया का खुलापन देख लोग उसके विरोध में बात करते हैं। तो दूसरी तरफ इसके देखने की संख्या भी बढ़ रही है। ये कैसा विरोधाभास है? एक तरफ नैतिकता व संयम की बातें तो दूसरी तरफ उन्मुक्तता व असंयम। आज आम आदमी दो तरफे दबाव से घिरा हुआ दिशाहीन होता जा रहा है।

बदलती जीवन शैली में रिश्तों की संयमित मर्यादाएँ बनाए रखना हम सब का दायित्व है। यह तभी संभव है जब हम जीवन में संयम के महत्व को जानें, धर्म एवं संस्कृति को पहचानें। यह भी जानें कि भोगवादी जीवन शैली के दुष्परिणाम किस तरह हम भोग रहे हैं। आज भयंकर बीमारियाँ असंयम के कारण हमें अपना शिकार बना रही हैं। वर्तमान में आवश्यक है कि हम अपने संस्कारों के साथ संयम का आचरण कर नैतिक एवं चारित्रिक मूल्यों को बचाएँ। पारस्परिक सौहार्द व मर्यादाओं के साथ रिश्तों को निभाएँ। तभी एक स्वस्थ समाज की कल्पना साकार होगी और साकार होंगे हमारे आचार्यों के बचन कि 'माता-बहिन सुता पहिचानो'

'संस्कार सागर' सितम्बर २००७ से साभार

अनंतकाल की आत्मा

महावीर जयंती के दिन भोपाल में लाल परेड ग्राऊंड में आचार्य श्री के प्रवचन हुये। प्रवचन के उपरान्त आचार्य गुरुदेव चौक मंदिर की ओर बिहार करते हुए आ रहे थे। तभी किसी श्रावक ने आचार्य श्री जी के प्रति भक्ति प्रदर्शित करते हुये नारा लगाया-“चतुर्थकाल की आत्मा, काया पंचम काल की”

यह सुनकर आचार्य गुरुदेव ने अपनी लघुता प्रदर्शित करते हुए कहा- भैया चतुर्थ काल की आत्मा नहीं, अनंतकाल की आत्मा कहो, अनंत काल की। अनंत काल से यह आत्मा संसार में रह रही है।

मुनि श्री कुन्धुसागरकृत 'संस्मरण' से साभार

कालसिंह ने मृग चेतन को घेरा भववन में

डॉ. श्रीमती रमा जैन से. नि. प्राध्यापक

मानवीय इच्छाओं और आकांक्षाओं की कोई सीमा नहीं है। मानव जितना चाहता है, उतना कभी हासिल नहीं कर पाता। अंत में निराश ही होना पड़ता है। जैन कवि दौलतराम ने छहढाला की पांचवी ढाल की अनित्य भावना में लिख है-

‘जोवन गृह गोधन नारी, हय गय जन आज्ञाकारी।
इन्द्रिय भोग छिन थाई, सुरधनु चपला चपलाई॥’

कवि कहते हैं कि संसार में जो कुछ है सब क्षणिक है, नाशवान है। मनुष्य को प्राप्त यह यौवन, घर-मकान दुधारू सुन्दर गायें, पत्नी, घोड़े, हाथी और आज्ञाकारी सेवक तथा इंद्रियों के सम्पूर्ण विषय भोग क्षणिक हैं। जैसे आसमान में इन्द्र धनुष और विद्युत की चमक हमें थोड़ी देर के लिए अपनी ओर आकर्षित कर लेती है और तत्काल विलीन हो जाती है। इस बात को कवि मंगतराय ने एक रूपक के द्वारा प्रस्तुत किया है-

कालसिंह ने मृगचेतन को घेरा भववन में।

नहीं बचावन हारा कोई, यों समझो मन में॥

राजा भरत चक्रवर्ती के अतिशय पुण्य के उदय से उनकी आयुधशाला में चक्ररत्न के साथ ही नवनिधियाँ एक एक करके प्रकट हुए। इन दिव्य उपकरणों के स्वामी बनकर चक्रवर्ती भरतेश ने छह खण्ड की पृथ्वी पर अपना भरत निष्कण्टक साम्राज्य स्थापित कर लिया। जब चक्रवर्ती भरत ने अपने प्रदेश की अन्तिम सीमाओं पर विजय प्राप्त कर वृषभाचल पर्वत के उचुंग मणिमय शिखरों को देखा तो एक क्षण के लिए भरत चक्रवर्ती के मन में अभिमान जागृत हो गया। वे अपनी कीर्ति को पर्वत के उच्च शिखर पर अंकित करने के उद्देश्य से अपने मंत्री के साथ वहाँ गये। वहाँ देखा कि ऊँची से ऊँची पर्वतशिला (चट्टान) पर सर्वत्र पहले से ही अनेक विश्वविजेताओं के नाम अंकित थे। पूरा वृषभाचल पर्वत उन विजेताओं की जय गाथाओं से भरा था चक्रवर्ती भरत अवाक रह गये। चक्रवर्ती भरत का मन तत्काल ‘मान के शिखर से उतर कर सामान्य हो गया! वे सोचने

लगे- हम तो कबहु न निज घर आये।

पर पद निज पद मानि मगन हुई, पर परिणति लपटाये।

शुद्ध बुद्ध सुखकन्द मनोहर, आतम गुण नहीं गाये॥

कविवर बनारसीदास कहते हैं, हे प्राणी जो तू अपनी आँखों से देख रहा है, उसमें तेरा कुछ भी नहीं है-

‘जो तू देखै इन आंखिन सौ, तामे कछू न तेरा,
चेतन तू तिंहुकाल अकेला।’

नदी नाव संजोग मिले ज्यों, त्यों कुटुंब का मेला।
यह संसार असार रूप सब, जो पेखन खेला॥

सुख सम्पत्ति शरीर जल बुदबुद, विनसत नाही वेला।

बनारसीदास जी कहते हैं- यह जीव सदा से अकेला है यह जो कुटुम्ब और रिश्तेदार दिखाई देते हैं वे सब नदी नाव के संयोग के समान हैं यह सारा संसार असार है, तथा जुगुनू की चमक के समान झणभंगुर है सुख सम्पत्ति और सुन्दर शरीर जल के बुदबुदे के समान थोड़ी ही देर में नष्ट होने वाले है। अतः संसार से नाते रिश्ते न जोड़कर तू अपनी आत्मा को पहचान। कविवर दयानतराय भी संसार की असारता को सुन्दर शब्दों में अभिव्यक्त करते हैं- नहीं ऐसा जनम बारम्बार।

कठिन कठिन लह्यो मानुष भव, विषय तजिय मतिहार।

पाय चिन्तामन रतन शठ, छिपत उदधि मझार॥

पाय अमृत पाँव धोवे, कहत सुगुरु पुकार।

तजो विषय कषाय ‘द्यानत’ ज्यों लहो भव पार॥

कवि कहते हैं कि यह मनुष्य भव बार-बार नहीं मिलता चिन्तामणि रत्न के समान दुर्लभ है जिसको यह अज्ञानी जीव (कौआ उड़ाने हेतु) सागर में डाल देता है इसी तरह वह उस अमृत के समान जिसे पीकर अजर अमर होते थे, पीने के बजाय पाँव धोने में लगा देता है। अर्थात् विषय कषायों में तल्लीन होकर यह प्राणी मनुष्य जन्म को व्यर्थ गवाँ देता है। ऐसा यह नरभव बार-बार नहीं मिलता। अतः हे प्राणी तू संयम धारण कर इस नरजन्म को सफल बना ले।

उप अधिष्ठता गुरुदत्त उदासीन आश्रम
सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि, जिला छतरपुर

जब कभी धर्म पर, धर्मात्मा पर संकट आये, उपसर्ग हुए, तब भगवान् की भक्ति के प्रभाव से ही देवों के द्वारा अतिशय-चमत्कार हुए, उपसर्ग टले और धर्म का जय-जयकार हुआ।

मुनि श्री समतासागरकृत ‘सागर बूँद समाय’ से साभार

अभिशाप बना वरदान : एक लड़की की कहानी

जिनेशकुमार जैन

एक लड़की थी,
जो सुन नहीं सकती थी
फिर भी आपसे दोस्ती कर सकती थी।
एक लड़की थी,
बचपन में गंभीर बीमारी से ग्रसित हुई
तो आँखों से रोशनी चली गई।
साथ में
सुनने की क्षमता भी चली गई।
जिसकी आँख में रोशनी न थी,
कानों में आवाज की पहचान न थी।
फिर भी उसने दूसरों को रोशनी देने के लिए,
87 वर्षों तक संघर्ष किया।
अंधों और अपंगों को
जी भर कर जीना सिखाया।
उसने दर्जनों किबातें लिखीं।
'ऐनी' की मदद से
मूक बधिरों की भाषा सीखी।
पहली नेत्रहीन, बधिर ग्रेजुएट लड़की बनी।
कौन थी वह?
जिसने कहा—
'अपंगता जीवन का अंत नहीं,
अपंग भी अपने काम से,
अँधेरों पर विजय प्राप्त कर सकते हैं,
शारीरिक अक्षमता मनुष्य को'
"मजबूर नहीं, मशहूर बनाती है।"
असामान्य व्यक्ति के लिए— "असाधारण काम"
उनके मन और विचारों की शक्ति का परिणाम है।
वह लड़की थी
'हेलन केलर'
जो अंधों के हितों के लिए
अमेरिका के 12 राष्ट्रपतियों से मिली,
'हेलेन केलर' की पहली पुस्तक
'स्टोरी ऑफ़ माई लाईफ़' का 50 भाषाओं में अनुवाद
हुआ है।
उसने कहा—
नेत्रहीन न तो जीनियस हैं, न असामान्य, न ही

कमजोर।

उनके पास भी एक दिमाग है, जो शिक्षित हो सकता है।

उनके पास भी महत्वाकांक्षा है, जिन्हें पूरा करने का उनको भी अधिकार है।

वो भी कोशिश कर सकते हैं, अपने काम से रोशनी पर विजय प्राप्त कर सकते हैं।

एक बार किसी ने हेलन केलर से पूछा
"न देख सकने से ज्यादा बुरा जीवन में क्या हो सकता है?"

उसने कहा—

'देख सकना' और उससे भी बुरा है 'देखकर न देखना'

(अंधा वह नहीं, जो देख नहीं सकता बल्कि अंधा वह है जो देखकर भी नहीं देखता है)।

अंधी, बहरी, गूँगी, 'हेलन केलर' कहा कहना था कि—

मेरे लिए जिन्दगी मोहक वस्तु है।

मेरे जीवन की अर्ध शताब्दी ने अगर मुझे कुछ सिखाया है तो वह यह कि आप स्वयं ही अपने लिए शांति प्राप्त कर सकते हैं।

उसने एक बार यह भी कहा है कि—
'उल्लंघन के लिए अगर रेखायें नहीं होती,
जीवन के लिए अगर बाधाएँ नहीं होती,
पार करने के लिए यदि सीमाएँ नहीं होती,
तो मानव जीवन में, पुरस्कार की तरह आने वाले आनंद में कमी अवश्य आ जाती।'

'हेलन केलर' का कहना था कि—
मैं केवल एक हूँ और मेरे जैसी केवल मैं ही हूँ।
मैं सब कुछ नहीं कर सकती लेकिन मैं,
अभी भी --- बहुत कुछ कर सकती हूँ।
यदि एक अपंग व्यक्ति इतना सब कुछ कर सकता है तो ---- आप क्यों नहीं ?

ई-8/6, शिवाकुंज, रेलवे सोसायटी
12 नं० बस स्टॉप, अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)

दहेज के विरोध में

विनोदकुमार 'नयन'

1
इंजीनियर, डॉक्टर हुए लड़के पढ़-पढ़ आज।
लाखों में बिकते यहाँ तनिक न आती लाज ॥

2
बिकते थे कभी देश में, गाय घोड़े और बैल।
लेकिन अब बिकते यहाँ, ऊँचे दाम में छैल ॥

3
जब तक भूखे भेड़िये, हैं समाज में लोग।
तब तक कैसे खत्म हो, यह दहेज का रोग ॥

4
जिन पर होता गर्व था, उन पर आती शर्म।
वे लाखों में बिक रहे, जिनके ऊँचे पद, धर्म ॥

5
बढ़े सो पावे का चलन चलता है यहाँ खूब।
डॉक्टर, इंजीनियर बिकें, अफसर बिकते खूब ॥

6
बेटा यहाँ गरीब का, हो कितना गुणवान।
ढूँढ़े से भी न मिले, कोई कद्रदान ॥

7
वणिक वृत्ति के लोग हैं, करो न झूठी आस।
बिन दहेज शादी करें, हमें नहीं विश्वास ॥

8
मंदिर, दान, दया धर, ये तब तक पाखंड।
सास-बहू में जब तलक प्रीति न होय अखण्ड ॥

9
शादी का बंधन पवित्र, खुशियों का त्यौहार।
लेकिन धन-लोलुपियों ने, बना दिया व्योपार ॥

10
लड़के अधबूढ़े हुए, माँगा खूब दहेज।
अब कहते हैं, दहेज से, है हमको परहेज ॥

11
बढ़ा प्रदर्शन दिखावा, शादी हुई व्यापार।
वधु-पक्ष से खर्च सब, लेने को तैयार ॥

12
महंगाई की मार से, जीना है दुश्वार।
ऊपर से ये दहेज का नाग रहा फुफकार ॥

13
भ्रूण हत्या कन्याओं की करने को मजबूर।
जब तक मौजूद है यहाँ, दहेज दानवी क्रूर ॥

14
पेट काटकर रख रहे, रुपये जोड़ सहेज।
बेटी सयानी हो रही, देना पड़े दहेज ॥

15
बेटी ज्यों-ज्यों हो बड़ी, चिन्तित हों माँ बाप।
रुपये कहाँ से लायेंगे, करने पीले हाथ ॥

16
जिसकी जितनी हैसियत, उससे ज्यादा देय।
बेटी की खुशी के लिए, बाप कर्ज तक लेय ॥

17
मिलता था इस देश में, बेटों को सम्मान।
मेहनत लगन से पा लिया, बेटियों ने स्थान ॥

18
बेटियाँ पढ़ लिखकर हुई आत्मनिर्भर होशियार।
उनका भी सम्मान हो, मिले सभी का प्यार ॥

19
बेटियाँ पढ़ लिखकर हुई डॉक्टर, इंजीनियरी पास।
लड़के आवारा हुए, खोदेंगे अब घाँस ॥

20
नहीं दहेज इतना बुरा, जो हैसियत से देय।
वह तो क्रूर कसाई है, गला पकड़ जो लेय ॥

21, सेंटर प्वाइंट जिंसी चौराहा, भोपाल (म.प्र.)

पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ पंडित भया न कोय।

ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय ॥

सन्त कबीर

प्रश्नकर्ता- पं० राकेश जैन लोहारिया।

प्रश्न- जैनध्वज में पाँच रंग किसके प्रतीक हैं?

समाधान- वीरनिर्वाण के 2500वें वर्ष के अवसर पर आ० विद्यानन्द जी ने सर्वप्रथम जैनध्वज का प्रचलन आरंभ किया। जैनध्वज में पाँच वर्ण होते हैं। सबसे पहला लाल रंग सिद्ध परमेष्ठी एवं पुरुषार्थ-कल्याण का प्रतीक है। दूसरा पीत वर्ण आचार्य परमेष्ठी व धनादि का प्रतीक है। तीसरा सफेद रंग अरिहंत परमेष्ठी तथा शांति को प्रदर्शित करने वाला है। चौथा हरा रंग उपाध्याय परमेष्ठी का प्रतीक है एवं भय का नाश करने वाला है। अंतिम पाँचवा नील वर्ण साधु परमेष्ठी तथा विजय का प्रतीक है।

मानसार ग्रंथ के अध्याय 35 (स्थापत्य एवं मूर्तिकला) में इस प्रकार कहा है-

स्फटिक श्वेतं रक्तं च, पीतश्यामनिभं तथा।

एतत्पंचपरमेष्ठिनः पंचवर्णं यथाक्रमम्॥

प्रश्नकर्ता- राजेश कुमार जबलपुर।

प्रश्न- क्या अभव्य नौवे ग्रैवेयक तक जा सकता है?

समाधान- शास्त्रों में अभव्य का गमन नवें ग्रैवेयक तक कहा है जिसके प्रमाण इस प्रकार हैं-

1. तिलोयपण्णत्ति अधिकार-8 में इस प्रकार है-

जिणलिंग-धारिणो जे, उक्किट्ट-तवस्समेण संपुण्णा।

ते जायंति अभव्वा, उवरिम-गेवेज्ज परियंतं ॥ 583 ॥

अर्थ- जो अभव्यजीव जिनलिंग को धारण करते हैं और उत्कृष्ट तप के श्रम से परिपूर्ण हैं वे उपरिम ग्रैवेयक पर्यन्त उत्पन्न होते हैं।

2. मूलाचार-भाग 2 पृष्ठ 303 पर इस प्रकार कहा है-

जा उवरिमगेवज्जं उववादो अभवियाण उक्कस्सो।

उक्केट्टेण तवेण दु णियमा णिगंगथलिंगेण ॥ 1178 ॥

अर्थ- अभव्यों का उत्कृष्ट जन्म निश्चित ही निर्ग्रथ लिङ्ग द्वारा उत्कृष्ट तप से उपरिम ग्रैवेयक पर्यन्त होता है। अर्थात् निर्ग्रथ मुद्रा एवं उत्कृष्ट तप के धारी अभव्यजीव नौवे ग्रैवेयक तक जाते हैं।

प्रश्नकर्ता- कु० रेणु इंदौर।

प्रश्न- एक कल्पकाल में कितने तीर्थङ्कर हो सकते हैं?

समाधान- उपरोक्त प्रश्न का समाधान आदरणीय पं० जवाहरलालजी शास्त्री भीण्डरवालों ने करणदशक नामक पुस्तक में अच्छी प्रकार लिखा है, उसी के आधार से यहाँ लिखते हैं।

तीर्थकर नामकर्म का उदय 13वें गुणस्थान से प्रारंभ होकर 14वें गुणस्थान के अंत तक रहता है। 12वें गुणस्थान तक के जीवों को तीर्थकर नहीं कहा जा सकता क्योंकि उनके तीर्थकर नामकर्म के उदय का अभाव है। एक कल्पकाल में 20 कोड़ाकोड़ी सागर होते हैं। इतने काल में भरत, ऐरावत में तो उत्सर्पिणी का तीसरा व अवसर्पिणी का चौथा ये दो काल ऐसे आते हैं कि जिनमें मोक्षमार्ग खुला रहता है तथा तीर्थकर नामकर्म के उदय वाले जीव भी मिलते हैं। पाँच भरत एवं पाँच ऐरावत = 10 क्षेत्रों में इस एक कल्पकाल में $24 \times 10 = 240$ तीर्थकर अवसर्पिणी में तथा 240 ही तीर्थकर उत्सर्पिणी में होते हैं अर्थात् एक कल्पकाल में सभी भरत एवं ऐरावत क्षेत्रों में 480 तीर्थकर होते हैं न कम और न अधिक। परंतु विदेह क्षेत्र में, श्लोकवार्तिक द्वितीयखण्ड पृष्ठ-96 के अनुसार, एक कल्पकाल में असंख्यात तीर्थकर नियम से हो जाते हैं। इसका कारण यह है कि प्रथम तीन नरकों में तीर्थकर प्रकृति की सत्तावाले असंख्यात जीव तथा स्वर्गों में भी असंख्यात जीव नियम से होते हैं। नरकों में तीर्थकर प्रकृति की सत्तावाले नारकियों की उत्कृष्ट आयु कुछ अधिक 3 सागर होती है (देखें-महाधवल 1/56-57)। अतः वर्तमान में जो तीर्थकर प्रकृति की सत्ता वाले असंख्यात नारकी हैं वे सब साधिक तीनसागर काल में नियम से मनुष्यगति प्राप्तकर तीर्थकर बन जायेंगे और ये सभी तीर्थकर विदेहक्षेत्र में ही होंगे। क्योंकि पाँच भरत और पाँच ऐरावत क्षेत्र में तो 20 कोड़ाकोड़ी सागर काल में मात्र 480 तीर्थकर ही होते हैं इससे अधिक नहीं। देवगति में तीर्थकर प्रकृति की सत्तावाले देवों की उत्कृष्ट आयु 33 सागर होती है और इनकी संख्या असंख्यात कही गयी है। धवल पुस्तक 8-पृष्ठ 75 के अनुसार जिस गति में तीर्थकर प्रकृति का आरंभ हुआ हो, उसे लेते हुए भी तीसरे भव में वह जीव नियम से तीर्थकर बनकर मुक्तिलाभ पाता है। अतः ये सभी तीर्थकर प्रकृति की सत्ता वाले असंख्यात देव भी, साधिक

33 सागर काल में नियम से मनुष्यगति प्राप्तकर मोक्ष पधारेंगे।

इस प्रकार तीर्थकर प्रकृति की सत्तावाले देव और नारकी, साधिक 33 सागर काल में कई असंख्यात हो जाते हैं। इसके अलावा वे तीर्थकर और भी हैं जो विदेहक्षेत्र में मनुष्यगति प्राप्त कर, उसी भव में तीर्थकर प्रकृति का बंध कर, तीर्थकर बनकर मोक्ष पधारते हैं।

इस प्रकार हम स्पष्ट रूप से कह सकते हैं कि जितने एक कल्पकाल में भरत-ऐरावत के 10 क्षेत्रों में से 480 तीर्थकर होते हैं, उतने ही काल में विदेह क्षेत्र से संख्यात × असंख्यात तीर्थकर हो जाते हैं।

प्रश्नकर्ता- डॉ० नवीन कुमार जबलपुर।

प्रश्न- क्या परमाणु के भी भेद होते हैं?

समाधान- श्री नियमसार गाथा-25 की टीका में एवं पंचास्तिकाय गाथा-80 की टीका में परमाणु के चार भेद इस प्रकार कहे गये हैं-

1. **कारण परमाणु-** जो पृथ्वी, जल, तेज और वायु इन चार धातुओं का कारण है उसे कारण परमाणु कहते हैं अथवा स्कंधों का निर्माण करने अर्थात् जिन परमाणुओं के मिलने से कोई स्कंध बने उसे कारण परमाणु कहते हैं।

2. **कार्य परमाणु-** स्कन्धों के भेद होते-होते जो अंतिम अंश रहता है उसे कार्य परमाणु कहते हैं अर्थात् स्कंध के विघटन से उत्पन्न होने वाला कार्य परमाणु है।

3. **जघन्य परमाणु-** जो परमाणु एक गुण स्निग्ध या एक गुण रूक्षवाला होने से बंध के अयोग्य है उसे जघन्य परमाणु कहते हैं।

4. **उत्कृष्ट परमाणु-** एक गुण स्निग्ध और रूक्षता के ऊपर दो गुण वाले और चार गुण वाले का सम संबंध होता है तथा तीन गुण वाले का और पाँच गुण वाले का विषम बंध होता है वह उत्कृष्ट परमाणु है।

प्रश्नकर्ता- सौ० सुमन पत्रावली, बेलगाँव।

प्रश्न- क्या गृहस्थों के आत्मा का ध्यान नहीं होता?

समाधान- 1. उपर्युक्त प्रश्न के समाधान में आचार्य कुन्दकुन्द द्वारा रचित मोक्षपाहुड़ की गाथा नं. 2 अत्यंत उपयोगी एवं विचारणीय है जो इस प्रकार है-

णमिऊण य तं देवं अणंतवरणाणदंसणं सुद्धं।

वोच्छं परमप्पाणं परमपयं परमजोईणं ॥ 2 ॥

अर्थ- अनंत उत्कृष्ट ज्ञान तथा अनंत उत्कृष्ट दर्शन से युक्त, निर्मल स्वरूप उन सर्वज्ञ वीतराग देव को नमस्कार कर मैं परम योगियों के लिए परम पदरूप परमात्मा का कथन करूँगा।

इस गाथा की टीका में श्री श्रुतसागर जी सूरि ने जो कहा है उसका हिन्दी अर्थ इस प्रकार है- “मैं परम योगियों अर्थात् दिगम्बर गुरुओं के लिए यह कथन करूँगा, इस प्रतिज्ञा वाक्य से यह सूचित होता है कि परमात्मा का ध्यान मुनियों के ही घटित होता है तपे हुए लोहे के गोले के समान गृहस्थों के परमात्मा का ध्यान संगत नहीं होता। उनके लिए तो दान, पूजा, पर्व के दिन उपवास करना, सम्यक्त्व का पालन करना तथा शीलव्रत की रक्षा करना आदि गृहस्थ धर्म का उपदेश ही कार्यकारी होता है। वे आगे लिखते हैं- “ये गृहस्था अपि सन्तो मनागात्मभावनामासाद्य वयं ध्यानिन इति ब्रुवते ते जिनधर्म विराधका मिथ्यादृष्टयो ज्ञातव्याः। अयत्याचारा गृहस्थधर्मादपि पतिता उभयभ्रष्टा वेदितव्याः।”

अर्थ- जो गृहस्थ होते हुए भी तथा रंचमात्र आत्मा की भावना को न पाते हुए भी यह कहते हैं कि हम तो आत्मा का ध्यान करते हैं वे जिनधर्म की विराधना करने वाले मिथ्यादृष्टि हैं। ऐसे जीव मुनियों के आचार से तो रहित हैं ही, गृहस्थ धर्म से भी पतित होकर उभयभ्रष्ट (दोनों से भ्रष्ट) होते हुए पापी हो जाते हैं।

2. आचार्य शुभचंद्र ने भी ज्ञानार्णव में इस प्रकार कहा है-

खपुष्पमथवाशुङ्गं खरस्यापि प्रतीयते।

न पुनर्देशकालेऽपि ध्यानसिद्धिर्गृहाश्रमे ॥ 4-17 ॥

अर्थ- आकाश के पुष्प और गधे के सींग नहीं होते हैं। कदाचित् किसी देश व काल में इनके होने की प्रतीति हो सकती है, परन्तु गृहस्थाश्रम में ध्यान की सिद्धि होनी तो किसी देश व काल में संभव नहीं है।

3. श्री देवसेनसूरि विरचित भावसंग्रह में इस प्रकार कहा है-

जो अजइ को वि एवं अत्थि गिहत्थाणणिच्चलंझाणं।

सुद्धं च गिरालंबं ण मुणइ सो आयमो जइणो ॥ 382 ॥

अर्थ- गृहस्थियों के निश्चल, शुद्ध एवं निरालंब धर्मध्यान होता है ऐसा जो कहता है वह आगम को

नहीं मानता। उपर्युक्त प्रमाणों से स्पष्ट है कि गृहस्थों के आत्मध्यान मानना आगम सम्मत नहीं है।

प्रश्न— अष्टप्रवचनमातृका का स्वरूप क्या है?

समाधान— भगवती-आराधना गाथा-1185 की टीका में इस प्रकार कहा है—

एवं पञ्चसमितयः तिस्रोऽगुप्तयश्च प्रवचनमातृकाः।

अर्थ— तीन गुप्ति और पाँच समितियों को प्रवचन-मातृका कहते हैं।

श्री मूलाचार गाथा-297 में इस प्रकार कहा है—
पणिधाण जोग जुत्तो पंचसु समिदीसु तीसु गुत्तीसु।

एस चरित्ताचारो अडुविहो होइ णायव्वो ॥ 297 ॥

अर्थ— पाँच समिति और तीन गुप्तियों में शुभ मन, वचन, काय की प्रवृत्ति रूप यह चारित्राचार आठ

प्रकार का अष्टप्रवचनमातृका है, ऐसा जानना चाहिए।

इनको मातृका क्यों कहा है इसके बारे में भगवती आराधना गाथा 1205 में इस प्रकार कहा है—

एदाओ अडुपवयणमादाओ णाणदंसणचरित्तं।

रक्खंति सदा मुणिणो मादा पुत्तं व पयदाओ ॥ 1205 ॥

अर्थ— ये अष्टप्रवचन माता मुनि के ज्ञान, दर्शन और चारित्र की सदा ऐसे रक्षा करती हैं जैसे कि पुत्र का हित करने में सावधान माता दुःखों से उसको बचाती है। (ठीक ऐसा ही वर्णन मूलाचार गाथा 336 में भी पाया जाता है) इसी कारण इनको मातृका कहा गया है।

1/205, प्रोफेसर्स कॉलोनी
आगरा— 282002 (उ.प्र.)

जहाँ जो परम्परा चल रही है ...?

दिगम्बर जैन समाज की एकता के लिये यह परम आवश्यक है कि पूजनपद्धति के सन्दर्भ में जहाँ जो तेरापंथी या बीसपंथी परम्परा चली आ रही है, आगे भी वही चलती रहे, उसमें किसी भी प्रकार का कोई परिवर्तन नहीं किया जाय। इस बात को समाज के सभी नेतृवर्ग ने सर्वसम्मति से स्वीकार किया है।

दिगम्बर जैन महासभा के अध्यक्ष श्री निर्मलकुमार जी सेठी जब लन्दन में मुझसे मिले तो उनकी जबान पर पहला यही सवाल था कि पूजा पद्धति आदि की जहाँ जो परम्परा चल रही है, वहाँ वही चले, उसमें किसी भी प्रकार का कोई परिवर्तन न किया जाय— क्या आप इस बात से सहमत हैं?

उनके प्रश्न के उत्तर में जब मैंने उनसे कहा कि हम इस बात से पूरी तरह सहमत हैं तो वे उछल पड़े और बड़े ही उत्साह से कहने लगे कि अब हमारी और आपकी एकता के मार्ग की आधी बाधाएँ तो दूर हो ही गई हैं। उक्त सन्दर्भ में समाज के जिन-जिन कर्णधारों से बात हुई, सभी ने यही मत व्यक्त किया।

ऐसी वैचारिक पृष्ठभूमि में यदि बावनगजा (बड़वानी) में होने वाले महामस्तकाभिषेक के सन्दर्भ में विचार करें तो कोई कारण नहीं है, कि हम वहाँ चली आ रही परम्परा में किसी प्रकार का बदलाव करें।

पत्रों में प्रकाशित समाचारों से जब समाज को यह पता चला कि वहाँ पंचामृत अभिषेक होगा, तो समाज में खलबली मच गई, क्योंकि अब तक वहाँ की परम्परा

तेरापंथानुसार जलाभिषेक करने की ही रही है।

इन्दौर या उसके आस-पास की समाज में यह बात बहुत जोरों से फैल रही है कि यदि सर सेठ हुकमचन्द जी साहब होते, तो यह किसी भी रूप में संभव नहीं था।

हमारे पास अनेक लोगों के पत्र आ रहे हैं, जिनमें उक्त सन्दर्भ में हमारे विचार जानने का प्रयत्न किया गया है और इस दिशा में कुछ करने का आग्रह भी किया गया है। यद्यपि हमारी नीति तो यह है कि हम समाज के या तीर्थों के मामलों में अनावश्यक रूप से कहीं न उलझें, तथापि उक्त संदर्भ में समाज के सभी कर्णधारों से विनम्र अनुरोध करना चाहते हैं कि समय रहते ऐसा कुछ करें कि हमारा यह तीर्थराज और उसके महामस्तकाभिषेक का यह मंगल अवसर दिगम्बर समाज में बिखराव लाने का हेतु न बने, कटुता उत्पन्न करने का प्रसंग न बने।

जल से अभिषेक करने में तो किसी को कोई परहेज होता ही नहीं है, अतः सभी समाज भगवान् का जलाभिषेक कर अपने जीवन को सफल व सार्थक करें, तो वातावरण में जो पवित्रता रहेगी, वह अपने आप में एक बहुत बड़ी उपलब्धि होगी।

हमें आशा ही नहीं, पूर्ण विश्वास है कि समय रहते हम सब किसी न किसी ऐसे सर्वसम्मत निर्णय पर अवश्य पहुँच जायेंगे कि जिसमें किसी एक भी व्यक्ति को मानसिक आघात न पहुँचे और यह काम पूरी सफलता के साथ निर्विघ्न सम्पन्न हो जावे, इस पवित्र भावना से विराम लेता हूँ।

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल, राष्ट्रीय अध्यक्ष
अ. भा. दि. जैन विद्वत्परिषद्

ग्रन्थ-समीक्षा

- लेखक - प्राचार्य डॉ० श्री नेमिचन्द्र जैन खुरई,
(म.प्र.)
- प्रकाशक - सर्वोदय फाउण्डेशन, खतौली (उ.प्र.)
एवं स्याद्वाद प्रचारिणी सभा, जयपुर
(राजस्थान)
- सम्पादक - डॉ० श्री नरेन्द्रकुमार जैन, रीडर
संस्कृत, गाजियाबाद (उ.प्र.)
- प्रकाशन - प्रथम संस्करण सन् 2007, वीर नि०
सं० 2533
- मूल्य - रुपये 200/- मात्र पृष्ठ संख्या-307
- प्राप्तिस्थान - (1) 1 यू० बी०, जवाहर नगर,
बैंग्लो, दिल्ली फोन: 23851570,
23850944
(2) कचौड़ी गली वाराणसी, (उ.प्र.)
फोन : 0542-2392376

साहित्यमनीषी कुशल प्रशासक शिक्षाविद् प्राचार्य डॉ० श्री नेमिचन्द्र जी जैनदर्शन एवं संस्कृत के ख्याति प्राप्त विद्वान् एवं सिद्धहस्त लेखक हैं। विद्वत्संगोष्ठियों में उच्चस्तरीय शोधपत्र प्रस्तुत कर इन्होंने विद्वत्समाज में अपने पाण्डित्य को प्रतिष्ठित किया है, तथा कार्यक्षेत्र में श्रेष्ठ संगठक, कार्यकुशल, आदर्श प्रशासक, कर्मठ एवं लगनशील व्यक्तित्व को उजागर किया है। इन्होंने अनेक वर्षों तक आ० समन्तभद्र की कृतियों का गहन अध्ययन मनन, चिन्तन कर, शताधिक सन्दर्भग्रन्थों तथा पत्र पत्रिकाओं का आलोड़न-विलोड़न करके 'भारतीयदर्शन के महामेरु आचार्य समन्तभद्र' नामक इस शोधग्रन्थ की रचना की है। इसी पर इन्हें मगध विश्वविद्यालय से पी-एच०डी० की उपाधि प्राप्त हुई है।

इस शोधग्रन्थ में आ० समन्तभद्र के कालनिर्धारण, उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व का बहुआयामी मूल्यांकन कर तथा अभी तक हुए तद्विषयक शोधकार्यों का सूक्ष्मता से पुनरीक्षण कर उनमें अवशिष्ट रहे अनछुए पहलुओं पर अपने निष्कर्षों को विशेषरूप से विश्लेषित कर प्रतिपादित किया है। आ० समन्तभद्र के बहु-आयामी व्यक्तित्व एवं कृतित्व का समालोचनात्मक इस ग्रन्थ के 5 अध्यायों के 12 परिच्छेदों में सुनियोजित कर प्रस्तुत किया है तथा अन्त में आ० समन्तभद्र द्वारा प्रमाण-तत्त्व-

आचार-मीमांसा तथा साहित्यिक काव्यविधा के क्षेत्र में किए गये उनके महनीय अवदानों को संक्षेप में उल्लिखित किया है।

डॉ० श्री नेमिचन्द्र जी के इस शोध ग्रन्थ के पारायण से आ० समन्तभद्र के बहुआयामी विराट् व्यक्तित्व, दार्शनिक चिन्तन, दार्शनिक जगत को उनकी अमूल्य देन उनकी तार्किकता, असाधारण पाण्डित्य, अनोखी प्रतिभा और जैनदर्शन के वैशिष्ट्य का पता चलता है तथा उनकी अनोखी भक्ति, काव्यसौष्टव, वाग्मिता, बहुश्रुतज्ञता तथा काव्यप्रतिभा का भी बोध होता है।

वस्तुतः आ० समन्तभद्र जैन दार्शनिक इतिहास में ऐसे प्रथम आचार्य हैं, जिन्होंने अपनी कृतियों के माध्यम से जैनदर्शन को तर्कशैली में प्रमाणशास्त्रीय पद्धति पर प्रतिष्ठापित किया है तथा परवर्ती दार्शनिकों, लेखकों को दर्शनशास्त्र, प्रमाणशास्त्र के आधारभूत सिद्धान्त तथा विविध प्रेरक सूत्र दिए। साथ ही जैनदर्शन के माहात्म्य / वैशिष्ट्य को विश्लेषित, विज्ञापित किया। जैनाचार्यों की परम्परा में वे जैनन्याय-जैनदर्शन के प्रतिष्ठापक, प्रभावक, आद्यस्तुतिकार सर्वोदयसिद्धान्त के प्रथम प्रस्तोता, श्रावकाचार पर सर्वप्रथम स्वतन्त्र रचनाकार अनोखी प्रतिभासम्पन्न महान् आचार्यों में परिगणित किए जाते हैं। परवर्ती आचार्य-लेखकों ने उनकी कृतियों पर बड़े-बड़े भाष्यों की रचना की है तथा उन्हें अनेक उपाधियों से विभूषित कर उनके प्रति श्रद्धा-भक्ति प्रदर्शित की है। डॉक्टर सा० का यह शोधग्रन्थ आचार्य श्री के इसी वैशिष्ट्य एवं उनके अमूल्य अवदान को अजागर करता है।

साथ ही डॉक्टर सा० की लगन, श्रमशीलता और जुझारूपन को भी अभिव्यक्ति करता है। कितनी निष्ठा और लगन से इन्होंने इस विपुल सामग्री को सप्रमाण सुव्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत किया है- यह उनके शोध-सौष्टव सुगम सरल बोधगम्य प्रतिपादन शैली तथा श्रमशीलता को दर्शाता है। सद्बोधक यह शोधग्रन्थ सभी को पठनीय है। शोधार्थियों एवं भावी पीढ़ी को प्रेरक तथा मार्गदर्शक भी है। ऐसे उत्तम प्रकाशन के लिए लेखक तथा प्रकाश सभी धन्यवाद के पात्र हैं।

प्राचार्य अभयकुमार जैन,
कानूनगो वार्ड, बीना (प्र.म.)

समाचार

श्री भागचन्द्र जी गदिया का निधन

परमधर्मानुरागी, दानवीर "समाजरत्न" का उपाधि से अलंकृत जिनभक्त परम मुनिभक्त, तीर्थभक्त, अनेक प्रमुख संस्थाओं के शीर्षस्थ पदाधिकारी, अखिल भारत-वर्षीय श्री दिगम्बर जैन ज्ञानोदय तीर्थक्षेत्र (नारेली) अजमेर के संस्थापक संरक्षक एवं अध्यक्ष रहे श्री भागचन्द्र जी सा० गदिया का दिनांक 17.12.2007 को प्रातः असामयिक देहावसान हो गया।

श्री भागचन्द्र जी गदिया के निधन से अजमेर समाज का एक देदीप्यमान चिराग बुझ गया। वे अजमेर की अनेकों संस्थाओं के अध्यक्ष पदों पर आसीन रहे। न केवल सामाजिक वरन् व्यापारिक क्षेत्र के धार्मिक पारमार्थिक अनेकों संस्थाओं के एवं राजस्थान सर्राफा संघ के लम्बे समय से अध्यक्ष रहे।

उनकी कार्य प्रणाली, सहनशीलता, निपुणता, वात्सल्य, भ्रातृत्वभाव, देव शास्त्र, गुरु के प्रति असीम श्रद्धा, समाज सेवा में सदैव तन, मन, धन से रत आदि गुणों के प्रशंसनीय, एवं अनुकरणीय व्यक्ति थे। उनके ऐसे अनेकों गुणों से सकल समाज अभीभूत था, और यहीं कारण रहा कि वे सबके लोकप्रिय नेता व बन्धु बन गये थे। ऐसे व्यक्तित्व के धनी को उनके मरणोपरान्त दिनांक 18.12.07 रात्रि को समाज की एक विशाल सभा में सर्वसम्मति से मरणोपरान्त "समाज रत्न" की उपाधि से अलंकृत कर अपने को गौरवान्वित अनुभव किया। इस श्रद्धांजलीसभा की अध्यक्षता श्रेष्ठी श्री ज्ञानचन्द्र जी दनगसियां एवं श्रेष्ठी श्री हुकमचन्द्र जी सेठी ने संयुक्त रूप से की तथा संयोजन संगीरत्न प्रो. श्री सुशीलजी पाटनी ने किया।

दिनांक 19.12.07 को प्रातः 9.00 बजे छोटा धड़ा नसियाँ जी के विशाल प्रांगण में आयोजित तीये की बैठक में सहस्र व्यक्तियों ने उपस्थिति देकर अपनी भावभीनी श्रद्धांजली अर्पित की। इस विशाल सभा में लगभग अर्द्धशतक संस्थाओं द्वारा प्रेषित शोक पत्र पढ़े गये।

बैठक के समापनोपरान्त नसियाँ जी के मंदिर प्रांगण में शान्ति पाठ का उच्चारण कर नौ बार णमोकार मंत्र

का जाप्य कर दिवंगंत आत्मा को शान्ति प्राप्त हो- भावना भायी गयी।

भीकम चन्द्र पाटनी, संयुक्त मंत्री
दिगम्बर जैन समिति (राज.) नारेली अजमेर

श्रीमती पार्वती देवी गंगवाल का देहावसान

चौरई जिला-छिन्दवाड़ा (म.प्र.) श्री सुरेश चन्द्र गंगवाल की पत्नी श्रीमती पार्वती देवी गंगवाल उम्र 74 वर्ष का अचानक धर्मध्यान करते हुए हृदयघात से निधन हो गया। 14.11.07 की रात्रि आप घरपर स्वाध्याय करते हुये तमाम मोह माया को छोड स्वर्गवासी हो गयी। ऐसी ही मृत्यु की कामना हर ज्ञानी-ध्यानी करता हैं। श्रीमती पार्वती देवी अपने जीवन काल में समाज में अग्रणी विदुषी, मृदुभाषी तथा धर्मपरायणा थीं। उनकी स्मृति में उनके पति श्री सुरेश चन्द्र गंगवाल ने 121 शास्त्रों सहित एक गोदरेज लाईब्रेरी अलमारी जैन मंदिर चौरई को भेंट की, साथ ही जिनभाषित पत्रिका को 1001 रुपये, भा. दि.जैन तीर्थ संरक्षण सभा को 1100 रुपये एवं जैन गजट लखनऊ को 1100 रुपये की राशि भेंट की।

अवनीत गंगवाल (पुत्र)

भगवान् ऋषभदेव द्विदिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी

दिगम्बर जैन तीर्थ श्री ऋषभांचल, वर्द्धमानपुरम, दिल्ली मेरठ रोड, गाजियाबाद (उ.प्र.) में दिनांक 1 और 2 दिसम्बर 2007 को एक अखिल भारतवर्षीय भगवान् ऋषभदेव द्विदिवसीय संगोष्ठी का आयोजन अध्यात्मयोगिनी, ध्यान योग शिविर संचालिका, परमपूज्या बालब्रह्मचारिणी माँश्री कौशल के पावन आशीर्वाद से उन्हीं के सान्निध्य में तथा दिगम्बर जैन तीर्थ ऋषभांचल के तत्त्वावधान में किया गया। संगोष्ठी में देश के पैंतीस गणमान्य मूर्धन्य विद्वानों ने प्रतिनिधित्व किया।

समागत सभी विद्वानों का डॉ० नरेन्द्रकुमार जैन, गाजियाबाद ने गरिमामय परिचय दिया। स्वागताध्यक्ष श्री आर०के०जैन एवं प्रबन्ध संयोजक श्री जीवेन्द्र जैन सहित समाज के गणमान्य महानुभावों के द्वारा उनका तिलक लगाकर, अंगवस्त्र भेंटकर तथा फाइल आदि प्रदान कर सम्मान किया गया। श्री प्रदीप जैन और श्रीमती प्रज्ञा

जैन के निर्देशन में स्वागत गीत एवं भव्य सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किये गये।

गोष्ठी के सयोजकद्वय डॉ० नरेन्द्रकुमार जैन, गाजियाबाद एवं डॉ० कपूरचन्द्र खतौली ने गोष्ठी के उद्देश्यों पर विस्तृत प्रकाश डालते हुए बताया कि आदिपुरुष, प्रजापति तीर्थंकर ऋषभदेव के गौरवमयी व्यक्तित्व और उनकी योगसाधनापद्धति को सार्वभौम रूप प्रदान करने तथा उसको जन जन तक पहुँचाने के उद्देश्य से इस गोष्ठी का आयोजन किया गया है। गोष्ठी में पठित सभी आलेख ऋषभांचल गौरव ग्रन्थ में प्रकाशित किये जायेंगे।

गोष्ठी में निम्नलिखित विद्वानों ने अपने शोधपत्रों का वाचन किया- 1. डॉ० शीतलचन्द्र जी जयपुर, 2. डॉ० जयकुमार जी मुजफ्फरनगर, 3. प्रो० भागचन्द्र जी जैन 'भास्कर' नागपुर, 4. पं० नीरज जी जैन सतना, 5. डॉ० सनतकुमार जैन जयपुर, 6. डॉ० श्रीयांश सिंघई जयपुर, 7. डॉ० ज्योति जैन खतौली, 8. डॉ० रेणु जैन मेरठ, 9. डॉ० भागचन्द्र जैन भागेन्दु दमोह, 10. डॉ० सुपार्श्वकुमार, 11. पं० सरमनलाल सरधना जयपुर, 12. डॉ० पुष्पलता जैन नागपुर, 13. पं० विनोदकुमार प्रतिष्ठाचार्य रजवांस, 14. डॉ० कमलेशकुमार जैन 15. ब्र० जयकुमार निशान्त टीकमगढ़, 16. डॉ० सुरेशचन्द्र जैन दिल्ली, 17. नरेन्द्रकुमार जैन गाजियाबाद, 18. डॉ० कपूरचन्द्र जैन खतौली।

अन्त में पूज्या माँश्री ने अपने आशीर्वाद में कहा कि पौराणिक अध्ययन करते समय हमें श्रद्धा और भक्ति

रखना आवश्यक है। भक्ति को तर्क की कसौटी पर नहीं कसा जा सकता।

डॉ० नरेन्द्रकुमार जैन
डॉ० कपूरचन्द्र जैन
संगोष्ठी संयोजक

आचार्य श्री विद्यासागर जी की प्रेरणा



श्री आर.के. जैन, अध्यक्ष, भारत जैन महामण्डल, श्री सुरेश जैन, आई.ए.एस. भोपाल, श्री शिखरचन्द्र पहाड़िया, श्री मदनलाल बैनाड़ा, आगरा एवं श्री अशोक भाभा, भोपाल ने बेगमगंज में पूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी के दर्शन किए। आचार्य श्री ने आशीर्वाद देते हुए जैन समाज के घटते हुए प्रभाव पर चिन्ता प्रगट की। आचार्य श्री ने प्रेरणा दी कि जैन समाज को कृषि एवं गौ पालन व्यवसाय को अपनाना चाहिए एवं तीर्थ क्षेत्रों के समीप स्थित गरीब परिवारों की प्रगति हेतु सहयोग देना चाहिए।

सुरेश जैन, आई.ए.एस.
भोपाल (म०प्र०)

तितिक्षा

जबलपुर से मुक्तागिरि की ओर आचार्य महाराज का गमन हुआ। मुलताई के आसपास रास्ते में एक दिन बहुत तेज बारिस आ गई। थोड़ी देर पानी बरसता रहा, फिर थम गया। महाराज मुस्कराए और आगे बढ़ते-बढ़ते बोले "भाई, इतनी जल्दी थककर थम गए। हम तो अभी नहीं थके।" उनका इशारा बादलों की ओर था। सभी हँसने लगे

आचार्य महाराज ने इस तरह चलते-चलते एक संदेश दे दिया कि कितनी भी बारिस आए, धूप हो, ठंड लगे, मोक्षार्थी को बिना थके सहज शान्त-भाव से अपने मोक्षमार्ग पर निरन्तर आगे बढ़ते रहना चाहिए। कितनी छोटी सी बात, लेकिन कितना बड़ा उपदेश।

मुक्तागिरि (1990)
मुनि श्री क्षमासागरकृत 'आत्मान्वेषी' से साभार

बर्थ डे

बर्थ डे,
वर्ष में एक बार आता है,
फिर भी यह
पढ़ा-लिखा, मूर्ख
समझ नहीं पाता है,
यूँ ही
जीवन के कई वर्ष गँवाता है ।
बर्थ डे,
वर्ष में एक बार आता है ।
अपने ही
सगे हाथों से
केक काटा जाता है,
और भोमबत्ती बुझाता है
मूर्ख
जन्मदिन से ही
काटता और
बुझाता है इसलिये
उसके जीवन में
न जोड़ना आता है और
न ही उजाला पाता है
बर्थ डे,
वर्ष में एक बार आता है ।
पंचम काल में
जो, जीव नर जन्म पाता है,
वह साथ में मिथ्यात्व
अवश्य लाता है

इसीलिए जो जन्मदिन मनाता है
वह धर्म की दृष्टि में कभी
सम्यक्त्व कैसे पाता है?
अंत में देव दुर्लभ नर जन्म
बर्थ डे मनाकर
व्यर्थ में गँवाता है
बर्थ डे,
वर्ष में एक बार आता है ।
हमें बर्थ डे मनाकर
न व्यर्थ डे मनाना है ।
हमें तो बस प्रतिदिन
वीतराग प्रभु के मंदिर में जाना है
और प्रभु की पूजा रचाना है
तभी सार्थक नर जन्म पाना है
न रात्रि में खाना है
न होटल में जाना है
हमें तो सार्थक
नर जन्म बनाना है
और प्राण जाने पर भी
अपने को मदिरा पान से बचाना है
न अंडा मांस खाना है
तभी सार्थक नर जन्म पाना है
यही प्रतिदिन,
बर्थ डे मनाना है ॥

मुनि श्री निर्णयसागर जी
संघस्थ-आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज

अपर्याप्त दशा

तत्त्वदृष्टिवाले व्यक्ति संसार के प्रत्येक प्रदार्थ में, घटना में, तत्त्व का ही दर्शन किया करते हैं । यूँ कहो उसमें से तत्त्व को खोज लिया करते हैं । इसलिए कहा गया है- “सृष्टि नहीं दृष्टि बदलो, जीवन बदल जावेगा ।”

विहार करते हुए नरसिंहपुर की ओर जा रहे थे, रास्ता बहुत खराब था । आचार्य गुरुदेव से कहा- ऐसे रास्ते पर समय बहुत लगता है एवं ऐसी सड़क पर पैर भी छिल जाते हैं, खराब हो जाते हैं । आचार्य महाराज हँसकर कहते हैं- पैर कम दिमाग ज्यादा खराब होता है, यह खराब सड़क अपर्याप्त दशा जैसी है । जिस प्रकार अपर्याप्त दशा में मिश्रकाय योग रहता है, उसमें मिश्र वर्गणायें आती हैं, उसी प्रकार इस रास्ते पर चलने से अलग प्रकार का अनुभव हो रहा है । थोड़ा रुककर बोले- हाँ अपूर्णता का नाम ही अपर्याप्त दशा है, वह यही है, जिसे पार करना है ।

नरसिंहपुर (28.01.2002)

मुनि श्री कुन्धुसागरकृत 'अनुभूत रास्ता' से साभार



मुनि श्री क्षमासागर जी की कविताएँ

लोग हँसते हैं

मैंने
सूरज को बुलाया है
वृक्ष भी आएँगे
चिड़िया भी आएगी,
नदी और सागर
दोनों ने
आने को कहा है,
धरती और आकाश
दोनों के नाम
मैंने चिट्ठी लिख दी है,
कि हमारी
माटी की गुड़िया के
ब्याह में
सभी को आना है।
लोग हँसते हैं,
कहते हैं
यह मेरा बचपना है।
सचमुच, प्रकृतिस्थ होना
बचपन में
लौटना है।

साधना

अभी मुझे और धीमे
कदम रखना है,
अभी तो
चलने की
आवाज आती है।

स्वयं अकेला

उसने
चाहा कि
उसके सब ओर
सागर हो
और अब
जब उसके
सब ओर
सागर फैला है,
वह स्वयं
एक द्वीप की तरह
निर्जन
और अकेला है।

कहनी-अबकहनी

कुछ कहने से पहले
हम कितना सोचते हैं
कि इस बार
सब कह देंगे।
पर कहने के बाद
मालूम पड़ता है
कि कहा कम
और अनकहा
ज्यादा रह गया है।
असल में, भावों के
प्रवाह में शब्दों का सेतु
या तो बन ही नहीं पाता
या टूट जाता है।

'अपना घर' से साभार